गद्य गौरव

पाठ्य–पुस्तक

बी.ए / बी.एफ.ए / बी.एस.डब्ल्यू / बी.म्यूजिक / बी.वी.ए / बी.ए (ऑनर्स)
तथा एस.ई.पी अधीन सभी बी.ए. कोर्स
B.A / B.F.A / B.S.W / B.music /B.V.A / B.A (honors)
and all B.A Courses under SEP

प्रथम सेमिस्टर / I SEMESTER

संपादक
डॉ. मोहम्मद अन्जरुल हक
डॉ. फरियाल शेख

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु – 560 001

GADYA GAURAV

Edited by:

Dr. Mohamed Anzarul Haq,
Dr. Fariyal Shaikh

© बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण – 2024

Pages - 99

प्रधान संपादक

प्रो. शेखर

मूल्य :

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु–560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2024-25 शैक्षिक वर्ष से एसईपी–2024 पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात हिंदी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे की जाए और दिए गए पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली–भांति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी है। एस.ई.पी सेमेस्टर (सीबीसीएस) पद्धति के अनुसार यह पाठ्यक्रम निर्माण किया गया है।

इस पृष्ठभूमि में हिंदी अध्ययन मंडल ने विभाग अध्यक्ष प्रो. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह गद्य संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाजशास्त्री विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

प्रो. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु – 560 001

प्रधान संपादक की कलम से.........

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नए–नए विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को एसईपी–2024 नीति के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एसईपी सेमेस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले संपादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नई पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय प्रो. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को राज्य शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य–पुस्तक में शामिल किए गए हैं। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

प्रो. शेखर
अध्यक्ष (बी.ओ.एस)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु–560 001

अनुक्रमणिका

गद्य गौरव

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
1.	**माता विमाता** (कहानी) — **भीष्म सहानी**	06 – 16
2.	**समस्या** (मौलिक निबंध) — **महावीर प्रसाद द्विवेदी**	17 – 28
3.	**अलोपी** (रेखाचित्र) — **महादेवी वर्मा**	29 – 46
4.	**आवाज का नीलाम** (एकांकी) — **धर्मवीर भारती**	47 – 61
5.	**अग्नि की उड़ान** (जीवनी) — **ए.पी.जे.अब्दुल कलाम, अरूण तिवारी**	62 – 77
6.	**आध्यात्मिक पागलों का मिशन** (व्यंग्य) — **हरिशंकर परसाई**	78 – 85
7.	**योग्यता और व्यवसाय का चुनाव** (परामर्श) — **माधवराव सप्रे**	86 – 93
8.	**गप–शप** (वर्णनात्मक निबंध) — **नामवर सिंह**	94 – 101
	परिशिष्ट	
	प्रशासनिक शब्दावली	102 – 104

1. माता–विमाता

भीष्म सहानी

लेखक परिचय :–स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में भीष्म साहनी का अपना अलग स्थान है। वे सफल उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार तथा निबन्धकार हैं। दलित और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति के लिए उनकी कहानियों में वर्तमान जीवन की विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य मिलता है। ये अपनी कहानियों में छोटे–छोटे पारिवारिक सन्दर्भों में व्यक्ति की अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण करते हैं। वे अपनी कहानियों में कहीं मध्यवर्ग के दोहरेपन, दिखावटीपन तथा आरामपरस्ती पर चोट करते हैं तो कहीं सामाजिक बदलाव के न हो पाने की छटपटाहट और उससे उपजनेवाली कुंठा का सटीक वर्णन करते हैं। भीष्म सहानी की कहानियों के केन्द्रीय बिन्दु हैं–मध्यवर्गीय जीवन के विविध पहलुओं का पूरी संवेदना के साथ चित्रण।

भीष्म सहानी के उपन्यासों में "तमस" उनका सबसे प्रसिद्ध एवं हिन्दी साहित्य आकादमी से पुरस्कृत उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने झरोखे, कड़ियाँ तथा मैयादास की माड़ी आदि उपन्यास लिखे हैं। उनके कहानी संग्रहों में पहला पाठ, भटकती राख, भाग्य–रेखा, पटरियाँ, वाङचू, अमृतसर आ गया है आदि प्रमुख हैं। उनके नाटकों में मुआवजे, कबिरा खड़ा बाजार में आदि उल्लेखनीय हैं।

....

पंद्रह डाउनलोड गाड़ी के छूटने में दो–एक मिनट की देर थी। हरी बत्ती दी जा चुकी थी और सिगनल डाउनलोड हो चुका था। मुसाफिर अपने–अपने डिब्बों में जाकर बैठ चुके थे, जब सहसा दो फटेहाल औरतों में हाथापाई होने लगी। एक औरत, दूसरी की गोद में से बच्चा छीनने की कोशिश करने लगी और बच्चेवाली औरत एक हाथ से बच्चे को छाती से चिपकाए, दूसरे से उस औरत के साथ जूझती हुई, गाड़ी में चढ़ जाने की कोशिश करने लगी।

“छोड़, तुझे मौत खाए, छोड़, गाड़ी छूट रही है.......।”

“नहीं दूँगी, मर जाऊँगी तो भी नहीं दूँगी....”दूसरी ने बच्चे के लिए फिर से झपटते हुए कहा।

कुछ देर पहले दोनों औरतें आपस में खड़ी बातें कर रहीं थीं, अभी दोनों छीना–झपटी करने लगी थीं। आस–पास के लोग देखकर हैरान हुए। तमाशबीन इकट्ठे होने लगे। प्लेटफार्म का बावर्दी हवलदार, जो नल पर पानी पीने के लिए जा रहा था, झगड़ा देखकर, छड़ी हिलाता हुआ आगे बढ़ आया।

“क्या बात है? क्या हल्ला मचा रही हो ?” उसने दबदबे के साथ कहा।

हवलदार को देखकर दोनों औरतें ठिठक गईं। दोनों हाँफ रही थीं और जानवरों की तरह एक–दूसरी को घूरे जा रही थीं।

दो–एक मुसाफिरों को गाड़ी पर चढ़ते देखकर बच्चेवाली औरत फिर गाड़ी की ओर लपकी, लेकिन दूसरी ने झपटकर उसे पकड़ लिया और उसे खींचती हुई फिर प्लेटफार्म के बीचोंबीच ले आई। लटकते–से अंगोवाला, काला, दुबला–सा बच्चा, औरत के कंधे से लगकर सो रहा था। औरतों की हाथापाई में उसकी पतली लंबूतरी–सी गर्दन, कभी झटका खाकर एक ओर को लुढ़क जाती, कभी दूसरी ओर को। लेकिन फिर भी उसकी नींद नहीं टूट रही थी।

"मत हल्ला करो, क्या बात है?" हवलदार ने छड़ी हिलाते हुए चिल्लाकर कहा और अपनी पतली बेंत की छड़ी दोनों औरतों के बीच खोंसकर उन्हें छुडाने की कोशिश करने लगा।

जो औरत बच्चा छीनने की कोशिश कर रही थी, उसने अपनी बड़ी–बड़ी कातर आँखों से हवलदार की ओर देखा और तड़पकर बोली, "मेरा बच्चा लिए जा रही है, नहीं दूँगी मैं बच्चा......।"

और फिर एक बा रवह बच्चा छीनने के लिए लपकी।

"गाड़ी छूट रही है नासपिट्टी, छोड़ मुझे! " बच्चेवाली औरत ने चिल्लाकर कहा और फिर गाड़ी के डिब्बे की ओर

जाने लगी। हवलदार ने आगे बढ़कर उसका रास्ता रोक लिया।

“इसका बच्चा क्यों लिए जा रही है? हवलदार ने कड़ककर कहा।”

“इसका कहाँ है! बच्चा मेरा है।”

“वह कहती है मेरा है, बोलो किसका बच्चा है?”

“मेरा है,” दूसरी छोटी उम्र की औरत बोली और कहते ही रो पड़ी। रूखे, अस्त–व्यस्त बोलों के बीच उसका चेहरा तमतमा रहा था, लेकिन आँखों में अब भी डर समाया हुआ था। बदहवास और व्याकुल वह फिर बच्चे की ओर बढ़ी।

हवलदार जल्दी–से–जल्दी झगड़ा निबटाना चाहता था। बच्चेवाली औरत से बोला, बच्चा इसके हवाले कर दो।

“क्यों दे दूँ, बच्चा मेंरा है....।”

“तेरे पेट से पैदा हुआ था?”

बच्चेवाली और चुप हो गई और घूर–घूरकर दूसरी औरत को देखने लगी।

“बोल, तेरे पेट से पैदा हुआ था?” हवलदार ने फिर गुस्से से पूछा।

“पेट से पैदा नहीं हुआ तो क्या, दूध तो मैंने पिलाया है। पिछले सात महीने से पिला रही हूँ।”

“दूध पिलाया है तो इससे बच्चा तेरा हो गया? बच्चे को जबरदस्ती लिए जा रही है?”

“जबरदस्ती क्यों ले जाऊँगी, मेरे अपने बच्चे सलामत रहें। इसी से पूछ लो, डायन सामने खड़ी है।” फिर दूसरी औरत को मुखातिब करके बोली, “कलमुँही बोलती क्यों नहीं? मैं तेरे से छीन के ले जा रही हूँ? हवलदारजी, इसने खुद बच्चे को मेरी गोद में डाला है। यह तो इसे जनकर घूरे पर फेंकने जा रही थी, मैंने कहा कि ला मुझे दे दे, मैं इसे पाल लूँगी। तब से मैं इसे पाल रही हूँ। यह मुझे यहाँ छोड़ने आई थी। यहाँ आकर मुकर गई।”

हवलदार दूसरी औरत की ओर मुड़ा, “तूने इसे खुद दिया था बच्चा?”

युवा औरत की बड़ी–बड़ी उद्भ्रांत आँखें कुछ देर तक दूसरी औरत की ओर देखती रहीं, फिर झुक गईं।

“दिया था। पर बच्चा मेरा है, मैं क्यों दूँ, मैं नहीं दूँगी।”

और निस्सहाय–सी फिर दूसरी औरत की ओर देखने लगी। पहले जो आँसू आँखों में फूट पड़े थे, घबराहट के कारण फौरन ही सूख गए।

“तूने दिया था तो अब क्यों वापस लेना चाहती है?”

कातर नेत्र फिर एक बार ऊपर को उठे और उसका सारा बदन काँप गया।

“यह इसे परदेस लिए जा रही है....।” और कहते–कहते वह फिर रो पड़ी।

“मैं सदा तेरे पास पड़ी रहूँ?” बच्चेवाली औरत बाँहें पसार–पसारकर आसपास के लोगों को सुनाती हुई बोलने लगी, “मेरे डेरेवाले सभी लोग चले गए हैं। यह मुझे छोड़ती नहीं थी। कहती थी दस दिन और रुक जा, फिर चली जाना। पाँच दिन और रुक जा, चली जाना। करते–करते महीना हो गया। मैं यहाँ कैसी पड़ी रहूँ? आज गाड़ी चलने लगी तो कलमुँही मुकर गई है।”

“यह तेरे रिश्ते की है?” हवलदार ने पूछा।

“रिश्ते की क्यों होगी जी, यह काठियावाड़ की है, हम बनजारे हैं।”

“तू गाड़ी में कहाँ जा रही है?”

“फीरोजपुर, जी!”

“वहाँ क्या है?”

"हम बनजारे हैं, हवलदारजी, पहले हमारे लोगों ने यहाँ जमीन ली थी, पूरे दो साल हलवाही की है। अब हमें फीरोजपुर में जमीन मिली है। हमारे सभी लोग चले गए हैं, पर यह मुझे छोड़ती नहीं थी।"

हवलदार दुविधा में पड़ गया। एक ने जनकर फेंक दिया, दूसरी ने दूध पिलाकर बड़ा किया। बच्चा किसका हुआ?

"तेरा घर–घाट कोई नहीं है, जो अपना बच्चा इसे दे दिया? तू रहती कहाँ है?" हवलदार ने बच्चे की माँ से पूछा।

"यह कहाँ रहेगी जी, पुल के पास फूस के झोंपड़े हैं, यह वहीं पर रहती है। हम भी वहीं पर रहते थे। यह मेरी पड़ोसिन है जी, मजूरी करती है। इसकी तो नाल भी मैंने काटी थी।" बच्चे की माँ उद्भ्रांत–सी अपने बच्चे की ओर देखे जा रही थी। लगता जैसे वह कुछ भी सुन नहीं रही है।

"इसका घरवाला कहाँ है ?"

"इसका घरवाला कोई नहीं जी। यह तो मरदों के पीछे भागती फिरती है, कोई इसे बसाता नहीं। इसका घरबार होता तो यह बच्चे को जनकर फेंकने क्यों जाती?"

इतने में गार्ड ने सीटी दी।

भीड़ में से छँटकर लोग अपने–अपने डिब्बों की ओर जाने लगे। बनजारन भी डिब्बे की ओर घूमी। बच्चे की माँ ने आगे बढ़कर उसके पाँव पकड़ लिए।

“मत जा, मत ले जा मेरे बच्चे को, मत ले जा!”

कुछेक लोगों को तरस आया। हवलदार ने दृढ़ता से आगे बढ़कर बनजारन से कहा, “बच्चा वापस दे दे। अगर माँ बच्चा नहीं देना चाहती तो तू उसे नहीं ले जा सकती।”

हवलदार की आवाज में दृढ़ता थी। बनजारन को इस निर्णय की आशा नहीं थी। वह छटपटा गई, “मैं क्यों दे दूँ जी, अपने बच्चे को भी कोई देता है ? किसको दे दूँ। इसका घर है, न घाट.....”

“गाड़ी छूटनेवाली है, जल्दी करो, बच्चा माँ के हवाले करो वरना हवालात में दे दूँगा।” हवलदार ने अबकी बार कड़ककर कहा।

औरत घबरा गई और किंकर्तव्यविमूढ़–सी आसपास खड़े लोगों की ओर देखने लगी। फिर अपनी साथिन की ओर देखते हुए चिल्लाकर बोली, “हरामजादी ! कुतिया ! यहाँ आकर मुकर गई। ले बेगैरत, ले सँभाल, फिर कहना दूध पिलाने को, जहर पिलाऊँगी, इसे भी और तुझे भी। सात महीने तक अपने बच्चे का पेट काटकर इसे दूध पिलाया है....।” और झटककर बच्चा उसके हाथ में दे दिया और फूट–फूटकर रोने लगी।

माँ ने बच्चा छाती से लगा दिया। बच्चे के मिलते ही वह भी ममता की मारी रोने लगी।

अजीब तमाशा था। दोनों औरतें रोए जा रही थीं। दोनों एक–दूसरी की दुश्मन, दोनों एक ही बच्चे की माताएँ। बेघर लोगों को न हँसने की तमीज होती है, न रोने की। और कलह कारण, दुबला–पतला, पित्त का मारा बच्चा, अब भी मुट्ठियाँ भींचे सो रहा था।

बनजारन गालियाँ बकती, रोती, बड़बड़ाती गाड़ी में चढ़ गई।

"तुम्हें तुम्हारा बच्चा मिल गया है। यहाँ से चली जाओ फौरन…".

हवलदार ने सोए बच्चे की पीठ पर छड़ी की नोंक रखते हुए, धमकाकर कहा, "फौरन चली जाओ यहाँ से!"

बच्चे को छाती से चिपकाए, माँ पीछे हट गई। भीड़ बिखर गई। डिब्बे के दरवाजे में खड़ी बनजारन अभी भी चिल्लाए जा रही थी, "कंजरी, हरामजादी, तूने इसे जनते ही क्यों नहीं मार डाला ? जब भी मार डालेगी, तभी मेरे दिल को चैन मिलेगा, नासपिट्टी….।"

बच्चे ने गोद पहचान रखी थी या तो इस कारण रहा हो या हवलदार की बेंत की नोक लगने के कारण, बच्चा जाग गया और अपनी नन्हीं–नन्हीं मुट्ठियों से पहले तो अपनी नाक

पीसने लगा, फिर आँखे, और थोड़ी देर के बाद अपनी मुट्ठी मुँह में ले जाकर चूसने लगा। औरत अभी भी उद्भ्रांत–सी पीछे हट गई और प्लेटफार्म की दीवार के साथ जा खड़ी हुई।

बच्चा दूध के धोखे में अपनी मुट्ठी चूसता रहा, पर दूध न मिलता देख बिल्कुल जग गया और दोनों टाँगें जोर–जोर से पटककर रोने लगा। माँ ने उसे दाएँ कंधे से हटाकर बाएँ कंधे के साथ सटा लिया। लेकिन बच्चा और भी जोर–जोर से रोने लगा।

माँ परेशान हो उठी। कभी बच्चे को एक करवट उठाती, कभी दूसरी; कभी दाएँ कंधे पर उसका सिर रखती, कभी बाएँ पर।

बच्चे का रोना सुनकर डिब्बे के दरवाजे में खड़ी बनजारन फिर चिल्लाने लगी, "मार डाल, तू इसे मार डाल! नासपिट्टी, इसे जहर क्यों नहीं दे देती! दोपहर से इसके मुँह में दूध की बूँद नहीं गई। बच्चा रोएगा नहीं ?"

हवलदार छड़ी झुलाता वहाँ से जा चुका था। दो–एक कुलियों को छोड़कर डिब्बे के सामने कोई नहीं था। दूर, पीछे की ओर, नीली वर्दीवाला गार्ड हरी झंडी दिखा रहा था।

गाड़ी ने सीटी दी और चलने को हुई।

बच्चा रोए जा रहा था। माँ ने अपने फटे हुए कुरते की जेब में से मूँगफली के कुछेक दाने निकाले और बच्चे के मुँह में ठूँसने लगी।

“नासपिट्टी, यह क्या उसके मुँह में डाल रही है ? मेरे बच्चे को मार डालेगी। कसाइन, कंजरी......!”

और घूमकर पहले एक छोटा—सा टीन का बक्सा और फिर छोटी—सी गठरी प्लेटफार्म पर फेंकी और बड़बड़ाती, गालियाँ बकती हुई गाड़ी पर से उतर आई, “हरामजादी, मेरी गाड़ी छुडा दी। मौत खाए तुझे! नासपिट्टी....।”

गाड़ी निकल गई। एक—एक करके कुली स्टेशन के बाहर चले गए। प्लेटफार्म पर मौन छा गया। हवलदार अपनी गश्त पर दूर प्लेटफार्म के दूसरे सिरे तक पहुँच चुका था। लेकिन जब छड़ी झुलाता हुआ वह वापस लौटा, तो प्लेटफार्म के एक कोने में दीवार के साथ सटकर वही दोनों औरतें बैठी थीं। बनजारन अपनी गोद में बच्चे को लिटाए, उसे अपने आँचल से ढके, दूध पिला रही थी और पास बैठी बच्चे की माँ धीरे—धीरे अपने लाडले के बाल सहला रही थी।

....

2. समस्या

–महावीर प्रसाद द्विवेदी

लेखक परिचय :– महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के बैसवारा रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव मं 15 मई 1864 को हुआ था। धनाभाव के कारण इनकी शिक्षा का क्रम अधिक समय तक न चल सका। इन्हें जी आई पी रेलवे में नौकरी मिल गई। 25 वर्ष की आयु में रेल विभाग अजमेर में एक वर्ष का प्रवास के बाद में उच्चाधिकारी से न पटने और स्वाभिमानी होने के कारण 1904 में झाँसी में रेल विभाग की 200 रूपये मासिक वेतन की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। नौकरी के साथ–साथ द्विवेदी अध्ययन में भी जुटे रहे और हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, संस्कृत आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

हिन्दी के महान साहित्यकार, पत्रकार एवं युगप्रवर्तक थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की अविस्मरणीय सेवा की और अपने युग की साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना को दिशा और दृष्टि प्रदान की। उनके इस अतुलनीय योगदान के कारण आधुनिक हिन्दी साहित्य का दूसरा युग द्विवेदी युग (1900–1920) के नाम से जाना जाता है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले लेखक थे, जिन्होंने केवल अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, बल्कि उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा था। कविता, कहानी, आलोचना, पुस्तक समीक्षा, अनुवाद, जीवनी आदि विधाओं के साथ उन्होंने अर्थशास्त्र, विज्ञान, इतिहास आदि अन्य

अनुशासनों में न सिर्फ विपुल मात्रा में लिखा, बल्कि अन्य लेखकों को भी इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित किया। 1904 में नौकरी से त्यागपत्र देने के पश्चात् स्थायी रूप से 'सरस्वती' के संपादन कार्य में लग गये। 200 रूपये मासिक की नौकरी त्यागकर मात्र 20 रूपये प्रतिमास पर सरस्वती के सम्पादक के रूप में कार्य करना उनके त्याग का परिचायक है। अत्यधिक रूगण होने के कारण 21 दिसम्बर 1938 को रायबरेली में इनका स्वर्गवास हो गया।

....

यह बात दिन–प्रतिदिन प्रत्यक्ष होती जाती है कि संसार तब तक मनुष्य का संसार नहीं हो सकता जब तक सभी भिन्न–भिन्न देश मिलकर उसे उसका असली रूप प्रदान कराने को सचेष्ट नहीं होते। यह न अकेले किसी एक देश का काम है और न अकेले उसके मन की ही बात है। इसके लिए तो संसार के सभी देशों को प्रयत्नशील होना होगा। इस सम्बन्ध में संसार के कुछ देशों में जो शक्तियाँ काम कर रही हैं उन्हें इस बात को भले प्रकार समझ लेना चाहिए कि केवल बाहरी अवस्थाओं के परिवर्तन से ही हम संसार को उसके उपयुक्त स्थान पर नहीं बिठा सकते। निस्सन्देह उसकी बाहरी अवस्थाओं में भी परिवर्तनों की आवश्यकता है, संपत्ति का समुचित विभाजन, सभी श्रेणी के मनुष्यों को जीवन में समान अवसर आदि बातों में परिवर्तन होने ही चाहिए। इन बातों की ओर पूर्वोक्त शक्तियाँ यथाशक्ति कार्य भी कर रही हैं तो भी यह कहना ती पड़ता है कि अकेले इसी ओर लगे रहने से हमारा अभीष्ट सिद्ध न होगा। उनके लिए हमें लोगों की नैतिक

भावनाओं का भी संस्कार करना पड़ेगा, हमें उन्हें अधिक बलवान् और प्रभावशाली बनाना होगा।

यहाँ हमें यह बात निर्भय होकर कह देनी पड़ेगी कि संसार के समुन्नत राष्ट्रों की राष्ट्रीय गतिविधियाँ अधार्मिक पुट से सम्पुटित हैं। उनमें सार्वजनिक भलाई और निःस्वार्थता का अभाव है। इसी कारण हम प्रतिस्पर्द्धा के वायुमण्डल में पथभ्रष्ट हो रहे हैं और हममें किसी एक आकांक्षा की पूर्ति होती नहीं देख पड़ती। एक राष्ट्र अपने राष्ट्र की हित–कामना की ही दृष्टि से दूसरे राष्ट्र से सम्बन्ध स्थापित करता है। इस हित–कामना में प्रतिस्पर्द्धा की पूरी छाप रहती है। ऐसी दिशा में सार्वजनिक भालाई के भाव को कौन पूछता है। जहाँ अपनी–अपनी पड़ी है, वहाँ लोक–कल्याण की भावना को पुरस्कृत करने को कौन आगे आवेगा। ईसा के चार सौ वर्ष पहले एक चीनी तत्वदर्शी ने कहा था, "राज्यों की एक–दूसरे पर चढ़ाई, परिवारों का एक–दूसरी की सम्पत्ति का अपहरण, शासन में दया का अभाव, मन्त्री में अपने राजा के प्रति भक्ति का अभाव, पिता–पुत्र में पारस्परिक कर्तव्यों में त्रुटि आदि बातें किसी राज्य के लिए हितकर नहीं हैं। पारस्परिक प्रेम के अभाव के कारण ही इनका उद्भव हुआ है। यदि एकमात्र प्रेम–भावना का ही सर्वत्र प्रचार हो जाय तो पारस्परिक प्रेम के अस्तित्व के करण राजा लोग आपस में न लड़ेंगे, कुटुम्ब का अधिपति अपने कुटुम्बियों के स्वत्वों का अपहरण नहीं करेगा, लोग डाके डालना छोड़ देंगे, शासक और राजकर्मचारी दयालु और एक–दूसरे के अनुरक्त हो जायेंगे, पिता पुत्र पर दयालु और पुत्र पिता का भक्त हो जायेगा और भाइयों में मेल बना रहेगा। प्रेम के ही प्रभाव से सबल निर्बलों को न सतायेंगे, धनी दीन

का अनादर न करेगा; श्रेष्ठ जन नीचों का तिरस्कार नहीं करेंगे और चालाक लोग सीधे–सादे को न ठगेंगे।" पूर्वोक्त तत्वदर्शी का यह कथन आज भी अक्षर–अक्षर सत्य है।

सुधीजन तथा लोकनायक इस बात का मर्म समझते हैं कि संसार को उपयुक्त बनाने के लिए जातियों की वैमनस्यता वांछनीय नहीं है, उसका निर्मूलन जितना ही शीघ्र हो जाय उतना ही अच्छा है; क्योंकि भय का स्थल वास्तव में यही एक बात है। इसके लिए हमें अपनी शत्रुताएँ भुला देनी पड़ेंगी और सार्वजनिक बन्धु–भाव के प्रचार के लिए कार्य–क्षेत्र में अवतीर्ण होना पड़ेगा, जीवन के आदर्शों के लिए हमें नये उत्साह से काम करना पड़ेगा, और निःस्वार्थता की नूतन भावना तथा सार्वजनिक सेवा का भाव अपनी कार्य–व्यवस्था में जोड़ना पड़ेगा। तभी अपने लक्ष्य की ओर हम अग्रसर हो सकेंगे।

स्वदेश–प्रेम धूर्तों का सबसे भयंकर ढोंग है। यह एक विद्वान् का कथन है और कहा भी गया है बड़े सोच–विचार एवं अनुभव के पश्चात्। सचमुच स्वदेश–प्रेम मनुष्य के लिए गौरव की वस्तु नहीं, वरन् लज्जा की बात है। जब तक संसार में इसका एक अणुमात्र भी शेष रहेगा तब तक शायद संसार में शान्ति न हो सकेगी। संसार में आजकल जो चारों ओर घोर हाहाकार सुनायी दे रहा है उसका मूल कारण है यही स्वदेश–प्रेम। अतएव जब तक प्रत्येक मनुष्य अपनी राष्ट्रीयता का सम्पूर्ण विस्मरण नहीं कर देता तब तक न तो संसार के ही कल्याण की आशा है और न किसी देश–विशेष का ही सच्चा उत्थान हो सकता। स्वदेश–प्रेम से मनुष्य के हृदय में एक मिथ्या अहंकार का उदय होता है, उसकी बुद्धि संकुचित हो

जाती है, यहाँ तक कि उसके प्रत्येक कार्य में, उसकी प्रत्येक इच्छा में, एक घृणित स्वार्थ की दुर्गन्ध आने लगती है।

यह विषाक्त स्वदेश–प्रेम यूरोप की उपज है और शोक तो इस बात का है कि वह अभी तक इसकी भयंकरता का यथार्थ अनुभव नहीं कर पाया है। इसमें सन्देह नहीं कि यूरोप ने जिस वैज्ञानिक सभ्यता क निर्माण किया है वह सर्वथा चमत्कारिक है, उससे मनुष्य–जीवन में बहुत–सी सुविधाएँ हो गयी हैं। किन्तु जहाँ एक ओर हम विज्ञान के चमत्कार पर मुग्ध हैं, वहाँ दूसरी ओर उसके रौद्र रूप से भी हमारा हृदय भीतर–ही–भीतर काँपा करता है। जिस समय विगत यूरोपीय महायुद्ध में जर्मनों 50 मील लम्बा गोला फेंकनेवाली तोपों से पेरिस को उड़ा देना चाहता था, उसी समय यूरोप के विद्वानों के कान खड़े हो गये थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि बस, यही संसार का अन्तिम युद्ध हो। चारों ओर से स्वाधीनता और स्वभाग्य–निर्णय की दुहाइयाँ दी गयीं। किन्तु परिणाम क्या हुआ–टाँय टाँय फिस। स्वदेशाभिमानी कूटनीतिज्ञों की कृपा से स्वाधीनता और स्वभाग्य–निर्णय के सिद्धान्त हवा हो गये। जिस आशा से संसार के लगभग एक करोड़ मनुष्यों ने रणदेवी को तृप्त करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी वह सर्वथा विफल हुई। न जाने अकाल–मृत्यु के मुख में प्रवेश करनेवाले इन नवयुवकों में कितने अपने भविष्य–जीवन में महापुरुष हो जाते, उनसे संसार का कितना उपकार होता। धन और वैभव का नाश हुआ सो तो हुआ, किन्तु इस नर–नाश की असीम हानि का कोई हिसाब नहीं लगाया जा सकता। इतने पर भी यदि यूरोप की आँखें नहीं खुलतीं तो फिर खुदा हाफ़िज। क्योंकि अब तो पचास मील के स्थान में सौ मील दूर गोला फेंकनेवाली तोपों का निर्माण हो चुका है। ईश्वर न करे, फिर

कभी संसार में महायुद्ध की आग भड़के। नही ंतो उसको बुझाने की चेष्टा करने के पहले ही हम सब भस्मसात् हो जायेंगे। मतलब यह कि यदि हमने शीघ्र ही युद्ध को नष्ट करने की चेष्टा नहीं की तो युद्ध बहुत जल्दी ही हम सबको हड़प जायेगा।

पाश्चात्य देशों में कुछ विचारशील पुरुष इस तथ्य से सर्वथ बेख़बर नहीं हैं। जहाँ–जहाँ निरस्त्रीकरण–सम्बन्धी कान्फ़रेन्सें हुआ करती हैं। लीग ऑफ़् नेशन्स को भी हम इसी विचार का परिणाम कह सकते हैं। किन्तु अभी यह केवल नाम–ही–नाम है। वास्तव में जिस शिला पर उसकी भित्ति स्थापित की गयी है वह कभी टिक ही नहीं सकती। आज से बहुत दिन पहले यूनान के नामी दार्शनिक अरिस्टाइल ने कहा था कि स्वार्थसाधन की दृष्टि से जिस मैत्री की उत्पत्ति होती है वह कभी स्थायी नहीं हो सकती, क्योंकि जहाँ स्वार्थ सध गया, वहाँ दोस्ती टूट गयी। राजनैतिक मामलों में तो रोज़ ही ऐसी दोस्तियाँ बनती–बिगड़ती रहती हैं। जो देश या राष्ट्र आज हमारा परम मित्र मालूम होता है, वही कल हमारा छिपा हुआ अथवा प्रकट शत्रु बन जाता है। इतिहास में इसके एक दो नहीं, सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं। अंग्रेज़ी में एक उक्ति प्रचलित है कि डोवर और केले कभी नहीं मिल सकते। किन्तु विगत महायुद्ध में डोवर के वही अंग्रेज़ तथा केले के वही फ्रेंच एक साथ कन्धे–से कन्धा मिलाकर लड़ते हुए देखे गये। सारांश यह कि स्वार्थमय और सिद्धान्तहीन मैत्री कोई मैत्री नहीं।

इसके अतिरिक्त लीग ऑफ् नेशन्स की पेंदी में एक और बड़ा छेद है। यह श्वेतांगों के दृष्टिकोण का दोष है। विचारशील पुरुषों की बात हम नहीं कहते। पाश्चात्य देशों के

अधिकांश लोगों में यह भाव समाया हुआ है कि श्वेतांगों को काले रंगवालों पर राज करने का सहज और स्वाभाविक स्वत्व प्राप्त है। एशियाइयों और अफ़रिकावासियों पर इनके द्वारा कैसे ही भयंकर अत्याचार होते रहें किन्तु यूरोप, अमरीका में किसी के कान पा जूँ नहीं रेंगती। बात यह कि जिस प्रकार गिद्ध का बाज़ पर और बाज़ का जुर्रे पर तथा जुर्रे का कौर्य पर टूट पड़ना सहज और स्वाभाविक है, उसी प्रकार श्वेतांग लोगों ने एशियाइयों और अफ़रीकावासियों का स्वेच्छानुसार उपभोग करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान लिया है। यही सारी लड़ाई और बुराई की जड़ है। यदि एशिया या अफ़रीका में कोई खान निकल आती है तो तुरन्त पाश्चात्य राष्ट्रों के मुँह में पानी आने लगता है। प्रत्येक राष्ट्र, साम, दाम, दण्ड, भेद कोई–न–कोई ऐसी हिकमत लड़ाना चाहता है कि उसका कुछ–न–कुछ हिस्सा उसके हाथ लग जाय। जिन ग़रीबों के देश में वह खान निकलती है वे बेचारे पूँजी, शिक्षा तथा सैनिक सामर्थ्य के अभाव से मुँह ताकते रह जाते हैं। भाग्य की कैसी दारुण विडम्बना है। अर्थलोलुपता की इसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण इन लोगों में कभी–कभी मनोमालिन्य और कभी–कभी मुठभेड़ तक हो जाती है।

इसी मुठभेड़ से बचने के लिए लीग ऑफ् नेशन्स की स्थापना की गयी है। इसका मूल सिद्धान्त है कि संसार में (निस्सन्देह यहाँ केवल श्वेतांग देशों से ही मतलब है) सदैव शक्ति–सामंजस्य हो अर्थात् कोई एक अथवा दो–एक राष्ट्र मिलकर संसार के अन्य राष्ट्रों को नीचा न दिखा सकें। शक्ति–सामंजस्य के अनुसार निरस्त्रीकरण–सम्बन्धी कान्फ़रेन्स ने एक योजना भी तैयार कर दी थी कि अमुक–अमुक राष्ट्र के

पास इतने लड़ाई के जहाज़ हों। बस, इन्हीं निर्जीव उपायों से पाश्चात्य देश राजनैतिक संसार में शान्ति–स्थापना करना चाहते हैं। इनमें से निस्सन्देह कुछ सच्चे और न्यायप्रिय भी हैं। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे धार्मिक नियमों को सामाजिक नियमों की भाँति–स्थापना करना चाहते हैं। इनमें से निस्सन्देह कुछ सच्चे और न्यायप्रिय भी हैं। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे धार्मिक नियमों को सामाजिक नियमों की भाँति भौगोलिक सीमा से बाँधना चाहते हैं। सच्चे–से–सच्चे और न्यायप्रिय–से–न्यायप्रिय यूरोपिय के हृदय में भी काले मनुष्यों के प्रति किये गये अत्याचारों का बड़ी मुश्किल से कुछ भी प्रभाव पड़ता है। किन्तु हमारी समझ में इस तथ्य को हृदयंगम करने के लिए अधिक बुद्धि की ज़रूरत नहीं कि जब तक पाश्चात्य देश एशियाइयों और आफ्रीकावासियों पर आँख मूँदे अत्याचार करते चले जा रहे हैं, जब त कवे इनके दुःखों का अनुभव कर उनको दूर करने की चेष्टा नहीं करते, तब तक शक्ति–सामंजस्य की एक क्या, सैंकड़ों योजनाओं से भी संसार में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती।

कवि–सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस बात को अपनी अनोखी सूझ से एक ही शब्द में समझा दिया है। उन्होंने इस लीग को मस्त हाथियों की समाज से उपमा दी है। वे कहते हैं– निर्बल सबलों के लिए उतने ही भयानक हैं जितना कि हाथियों को दलदल। उस पर कोई आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि उसमें प्रतिरोध करने की शक्ति ही नहीं रहती, वह उस भारी बोझ को अपने भीतर ही खींचने की चेष्टा करता है। राजनीतिज्ञों की दृष्टि केवल हथियारबन्द सैनिकों पर रहती है, उन्हीं के बलाबल का वे हिसाब लगाया करते हैं, उनके पास वह तृतीय नेत्र नहीं जिसके द्वारा वे असहायों को सहारा

देनेवाले उस अतिरिक्त हाथ के दर्शन कर सकें जो सदा अपने कर्तव्य के लिए तैयार रहता है। यद्यपि उसके प्रत्यक्ष होने में कुछ समय लगता है, तथापि वह उनको मज़बूती से पकड़ता हैं। अन्त में वह दिन आता है जब सबलों को नीचा देखना पड़ता है। बात यह है कि लीग ऑफ् नेशन्स जैसी मशीनों द्वारा निर्मित शान्ति कभी स्थायी नहीं हो सकती।

किन्तु केवल युद्ध ही राष्ट्रीयता का एकमात्र दुष्परिणाम नहीं है। राष्ट्रीयता के कारण स्वयं वैज्ञानिक सभ्यता की प्रगति बन्द हो रही है। आधुनिक संसार की प्रत्येक दिशा में गड़बड़ फैली हुई है। उदाहरण के लिए हम लोगों की भाषाएँ भिन्न हैं, कानून भिन्न हैं, सिक्के भिन्न हैं, परिच्छेद भी भिन्न हैं। यदि आधुनिक संसार को उन्नति के पथ पर और भी आगे अग्रसर होना है, यदि हम विज्ञान और व्यवसाय की अवलेहना करने को तैयार नहीं है, तो उपर्युक्त विभिन्नताएँ तुरन्त दूर हो जाना चाहिए, क्योंकि ये हमारे ध्येय के साधक नहीं, वरन् बाधक हैं। आधुनिक विज्ञान और व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए अब हमें एक संसारव्यापी भाषा एवं सार्वजनिक सिक्कों की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्यमात्र का यदि एक ही धर्म हो जाय तो फिर कहना ही क्या। किन्तु इसमे सबसे बड़ा रोड़ा है राष्ट्रीयता। परन्तु यदि हम इस सभ्यता को सार्थक बनाना चाहते हैं तो हमें बिना संकोच के इन विभिन्नताओं को मिटाने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए, अन्यथा संसार में न तो शान्ति हो सकती है और न सुख।

आधुनिक विज्ञान का निष्कर्ष भी यही कहता है। आज संसार का सम्बन्ध पहले की अपेक्षा कहीं अधिक घनिष्ठ हो गया है। किन्तु इस वृद्धि—क्रम का इसी जगह अन्त नहीं हो

सकता, भविष्य में उसमें आज से भी अधिक घनिष्ठता होना अनिवार्य है। पहले इंग्लैण्ड से भारतवर्ष तक की यात्रा में छह मास से अधिक लगता था, आज तीन सप्ताह लगते हैं, किन्तु थोड़े ही दिनों में केवल तीन ही दिन लगेंगे। पहले एक–दूसरे देश से इतना अधिक सम्पर्क नहीं थ जितना आज है। यदि जर्मनी या रूस में आज लोग दुःखी और क्षुधातुर हैं तो यह केवल जर्मनी और रूसियों के ही लिए चिन्ता का विषय नहीं है, किन्तु दूसरे देशों के व्यवसाय पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में, आधुनिक संसार एक शरीर के सदृश है, उसका कोई अवयव सर्वथा पृथक् नहीं हो सकता। यदि वह अकेला छोड़ दिया जायेगा तो कुछ दिनों में सड़ जायेगा तथा दूसरे अंगों में दुर्गन्ध फैलाने का कारण होगा। यदि एक देश में शिल्पकला का अभ्युदय होता है तो दूसरे देशों का व्यवसाय बढ़ जाता है, यदि किसी देश का दिवाला निकलता है तो दूसरे देशों का बाज़ार भी मन्दा पड़ जाता है। इस उत्तरोत्तर बढ़नेवाली घनिष्ठता से पूरा–पूरा लाभ उठाने के लिए हमें देशों और देशों के बीच में अनावश्यक बाधा डालनेवाली सभी प्रथाएँ दूर कर देना चाहिए। किसी–किसी देश में एशियाइयों और अफ़रीकावासियों के विरूद्ध प्रवेश–निषेध के जो कानून बनाये गये हैं वे तो वर्तमान सभ्यता पर सबसे बड़ा कलंक हैं। हमें विद्वानों के परामर्श से एक ऐसी सार्वजनिक भाषा का संस्कार कर लेना चाहिए जो आसानी के साथ संसार के शिक्षित समुदाय द्वारा सीखी जा सके। इसी प्रकार प्रत्येक देश में एक से ही सिक्के तोल और लम्बाई के एक से ही माप के चलने चाहिए। इससे कोई हानि नहीं, साथ ही अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में अचिन्त्य लाभ होने की सम्भावना है।

बहुत–से कह सकते हैं कि ये सब स्वप्न की बातें हैं, अथवा पागलों का प्रलाप है। किन्तु यदि संसार को अपनी

सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना है तो वह इन प्रश्नों को बहुत दिन तक नहीं टाल सकता। वास्तव में अभी तक पाश्चात्य देशों ने ठीक–ठीक यह पता नहीं पाया है कि सभ्यता और शिक्षा का अन्तिम उद्‌देश्य क्या है। अधिकांश लोगों का जीवन बचपन से लेकर मरण–पर्यन्त केवल पेट भरने में ही बीतता है। पेट–पूजा ही उनके जीवन में सतत परिश्रम का अन्तिम ध्येय है। किन्तु क्या इन्द्रिय–तृप्ति से मानवीय हृदय सन्तुष्ट हो सकता है ? जब हम जीवन के उद्‌देश्य को समझ लेते हैं तभी हमें अपने और संसार के पारस्परिक सम्बन्ध का यथार्थ बोध हो सकता है। तभी हमें सार्वजनिक भ्रातृभाव, अन्तर्जातीय सहानुभूति तथा विश्व–नागरिकता का असली अनुभव हो सकता है। उस समय विज्ञान की भी कायापलट हो जायेगी, वह ऐसे साधन ढूँढ़ निकालेगा जिससे यह विशाल कुटुम्ब अविच्छिन्न रूप से एकता के सूत्र में बँध जाये। जीवन की प्रत्येक शाखा का दृष्टिकोण बदल जायेगा, हम किसी प्रश्न पर अनुदार स्वदेश–प्रेम–जनित अहम्मन्यता एवं असहिष्णुता से विचार नहीं कर सकेंगे। हम केवल उन्हीं योजनाओं में तल्लीन होंगे जिनसे बिना किसी भेद–भाव के मनुष्य–भाव का कल्याण होने की आशा हो। तभी हमें राष्ट्रीयता की निरर्थकता तथा अन्तर्जातीय समवेदना का प्रत्यक्ष अनुभव होगा। हम किसी देश–विशेष के नागरिक न होकर सारे विश्व के नागरिक होंगे। वास्तव में यह कोई नवीन सिद्धान्त नहीं, भारतवर्ष के सामने तो अनादिकाल से (वसुधैव कुटुम्बकम्) का आदर्श रहा है। किन्तु संसार में एक भी ऐसा धर्म नहीं जिसने मनुष्यमात्र के भ्रातृत्व को स्वीकार न किया हो, पर आश्चर्य तो इस बात का है कि आज वही धर्म भ्रात्‌भाव की स्थापना में बाधक हो रहे हैं।

संसार की वर्तमान विकट समस्या को हल करने के लिए हमें राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धाओं और वैमनस्यों से हाथ खींच लेने पड़ेंगे। राष्ट्र के परे भी कोई वस्तु है। राष्ट्रों का अस्तित्व उसी वस्तु के लिए है। और वह है मानव–जातीयता। संसार के पुनर्निमाण की नवीन समस्याओं पर हमें आदर्श अन्तरराष्ट्रीयवाद की दृष्टि से ही विचार करना होगा। राष्ट्रों को अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से अपने पथ पर अग्रसर होना होगा तभी हम सार्वजनिक भ्रातृभाव स्थापित कर सकेंगे और (वसुधैव कुटुम्बकम्)का आदर्श कार्य में परिणत हो सकेगा। संसार के उद्धार का एकमात्र यही साधन है।

....

3. अलोपी

महादेवी वर्मा

लेखिका परिचयः— महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद में हुआ था। सुशिक्षित एवं संस्कार युक्त घराने में जन्म लेने के कारण महादेवी जी का बचपन से ही शिक्षा एवं आध्यात्मिकता के प्रति झुकाव रहा। सन् 1933 में उन्होंने संस्कृत विषय लेकर एम.ए. किया एवं उसी वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापिका बनी। प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्राचार्य पद को भी सुशोभित किया। उनकी साहित्य सेवा के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें 'भारत—भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया। ज्ञानपीठ पुरस्कार की भी हकदार बनी। महादेवी वर्मा मुख्य रूप से कवयित्री हैं परन्तु गद्य लेखन में भी उन्हें भरपूर सफलता मिली। उनका योगदान गद्य लेखन में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने वैचारिक प्रखरता के साथ ओजस्वी, संवेदनशील एवं चित्रात्मक शैली को अपनाया।

रचनाएँः काव्य—नीहार, रश्मि,नीरजा, सांध्य गीत, दीपशिखा।

गद्य—अतीत के चलचित्र, श्रृंखला की कड़ियाँ, पथ के साथी, स्मृति की रेखाएँ।

....

अन्धे अलोपी के घटना–शून्य जीवन में उपयोगिता का एक भी परमाणु है या नहीं, इसकी खोज कोई तत्व–वैज्ञानिक ही कर सकेगा। मुझे तो उसकी कथा आँसू भरी दृष्टि की छाया में काँपते हुए दुःख गीत की एक कड़ी–सी लगती रही है।

वैशाख नये गायक के समान अपनी अग्निवीणा पर एक–से–एक लम्बा आलाप लेकर संसार को विस्मित कर देना चाहता था। मेरा छोटा घर गर्मी की दृष्टि से कुम्हार का देहाती आवाँ बन रहा था और हवा से खुलते, बंद होते खिड़की–दरवाजों के कोलाहल के कारण आधुनिक कारखाने की भ्रान्ति उत्पन्न करता था। मैं इस मुखर ज्वाला के उपयुक्त ही काम कर रही थी अर्थात् उत्तर–पुस्तकों में अन्धाधुन्ध भरे ज्ञान–अज्ञान की राशि को विवेक में तपा–तपाकर ज्ञान–कणों का मूल्य निश्चित कर रही थी।

हम लोग भी कैसे विचित्र हैं। जब बर्फ, खस की टट्टी, बिजली के पंखे आदि अनेक कृत्रिम उपचारों से भी हम अपनी बुद्धि का पिघलना नहीं रोक सकते, तब दूसरों के ज्ञान की परीक्षा लेने बैठे हैं। यदि मस्तष्क, ठीक स्थिति में हो, तो कदाचित् हम न्याय के लिए ऐसे अन्यान्यपरायण हो ही न सकें।

तीसरा पहर थके यात्री के समान मानो ठहर–ठहर कर बढ़ा चला आ रहा था और मेरे हाथ तथा दृष्टि में पृष्ठों पर दौड़े की प्रतियोगिता चल रही थी। ऐसे अवसर पर किसी का

भी आना हमारी अधीसरता में झल्लाहट का पुट मिला देता है, उस पर यदि आगन्तुक के कंठस्वर में हमें उसके भिखारीपन का आभास मिल गया हो, तब तो कहना ही क्या। नौकर–चाकर सब अपनी–अपनी कोठरियों के अस्वाभाविक अन्धकार को और सघन करके स्वेच्छा से उलूक होने का सुख भोग रहे थे। सोचा, न उठूँ। पुकारने वाले को असमय आने का दण्ड सहना चाहिएः परन्तु भिखारी के सम्बन्ध में मेरे संस्कार कुछ ऐसी ही तर्कहीनता तक पहुँच चुके हैं, जहाँ से अन्धविश्वास की सीमारेखा दूर नहीं रह जाती।

बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या–उपव्याख्याओं के साथ इस व्यवहार–सूत्र को समझाती रही हैं कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं हो सकती, जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है, वरन् उस समय होती है, जब कोई भूल–भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिए हाथ फैला देता है।

माँ के जीवन–काल में ऐसे–अनेक अवसर आए होंगे, जब मुझे सीखा हुआ पाठ स्मरण नहीं रहाः पर जब से अप्रसन्न होने की सीमा के पार पहुँच चुकी हूँ, तब से मुझे भूला हुआ भी सारी सूक्ष्म व्याख्याओं के साथ याद आने लगा है।

भिखारी की आवश्यकता से अधिक मुझे अपनी शिष्टता की परीक्षा का ध्यान था। निरूपाय उठना पड़ा। कई बार पुकारने के उपरान्त पुकारने वाली मूर्तियाँ पत्तों में दरिद्र नीम

ही से छाया–याचना करने चल पड़ी थीं। ए.ओ. आदि अपरिचय–बोधक संज्ञा में अपना आमन्त्रण पहचान कर जब वे लौंटी, तब उनके प्रति पग पर मेरा कौतूहल पैर बढ़ाने लगा। चर्म के आवरण में से अपना विद्रोह प्रकट करने वाले अस्थि–पंजर के लिए फटे लम्बे कुर्ते को दोहरा कारागार बनाए 11–12 वर्ष का बालक लाठी को एक ओर से थामे आगे–आगे आ रहा था और ऊँची धोती और मैली बंडी में अपने कंकाल को यथासम्भव मुक्ति दिये एक अन्धा लाठी के दूसरे छोर के सहारे टटोल–टटोल कर बढ़ते हुए पैरों से उसका अनुसरण कर रहा था।

खेत में लकड़ी पर औंधाई हुई मटकी जैसे सिर को हिलाते हुए प्रौढ़ बालक ने वृद्ध युवक को आगे कर न जाने क्या बताया; पर जब उसने ऊपर मुख उठाकर नमस्कार किया, तब ऐसा जान पड़ा मानो नमस्कार का लक्ष्य खजूर का पेड़ है। जीवन में पहली बार मेरा मन प्रश्न के उपयुक्त शब्दों की खोज में भटक कर उस नेत्रहीन के सामने मूक–सा रह गया।

धूल के रंग के कपड़े और धूर भरे पैर तो थे ही, उस पर उसके छोटे–छोटे बालों, चपटे–से माथे, शिथिल पलकों की विरल बरूनियों, बिखरी–सी भौंहों, सूखे, पतले ओठों और कुछ ऊपर उठी हुई ठुड्डी पर राह की गर्द की एक पर्त इस तरह जम गयी थी कि वह आधू सूखे क्ले मॉडल के अतिरिक्त और कुछ लगता ही न था। दृष्टि के आलोक से शून्य छोटी–छोटी आँखें कच्चे काँच की मैली गोलियों के समान चमकहीन थीं;

जिनसे उस शरीर की निर्जीव मूर्तिमत्ता की भ्रान्ति और भी गहरी हो जाती थी।

कदाचित् इसी कारण उसके कण्ठ–स्वर ने मुझे अज्ञात–भाव से चौंका दिया।

इस वर्ग का जीवन खुली पुस्तक जैसा रहता है, अतः महान् ही नहीं, तुच्छतम आवश्यकता के अवसर पर भी उसकी कथा आदि से अन्त तक सुना देना सहज हो जाता है। इसके विपरीत हमारा जटिल–से–जटिलतम होता हुआ अन्तर्जगत् और कृत्रिम बनता हुआ जीवन ऐसी स्थिति उत्पन्न किये बिना नहीं रहता, जिसमें बाहर के बगुलेपन को भीतर की सड़ी–गली मछलियों से सफेदी मिलने लगती है। इसी से हमारी तारतम्यहीन कथा अधिकाधिक अकथनीय बनती जाती है और सुख–दुख की सरल मार्मिकता निर्जीव होने लगती है। हम सहज–भाव से अपनी उलझी कहानी कह नहीं सकते। अतः जब कहने बैठते हैं, तब कल्पना का एक–एक तार सत्य की अनेक झंकारों की भ्रान्ति उत्पन्न करके उसे और अधिक उलझाने लगता है।

अन्धे अलोपी की कथा में न मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ हाथ लगीं और न समस्याओं की भूलभूलैया प्राप्त हुई। हाँ, उसकी दैन्य भरी वाचालता से पता चला कि चक्षु के अभाव की पूर्ति उसकी रसना ने कर ली है और इस प्रकार पंच ज्ञानेन्द्रियों में चाहें ज्ञान का उचित विभाजन न हो सका; पर उसके परिमाण का सन्तुलन नहीं बिगड़ा।

उसका पिता काछी कुलावतंस रहा, पर बहुत दिनों तक अपने भावी वंशधर की प्रतीक्षा करने के उपरान्त उसे याचक के रूप में अलोपीदेवी के द्वार पर उपस्थित होना पड़ा। अलोपीदेवी कदाचित् उस उदार सूम के समान थीं जो अपने दानी होने की ख्याति के लिए दान करता है, याचक ही आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं। उनके मन्दिर से एक अखंडित मनूष्य–मूर्ति भी न निकल सकी। एक पुत्र दिया, वह भी नेत्रहीन। माँ–बाप ने उनके दान को उन्हीं के चरणों पर फेंक आने की कृतघ्नता तो नहीं दिखाई; पर उनकी कृपणता की घोषणा कर अन्य याचकों को सावधान करने के लिए उसका नाम रख दिया अलोपीदीन।

वही अलोपीदीन अब तेईस वर्ष का हो चुका है और काछी पिता अन्धे पुत्र से पितृ–ऋण का ब्याज–मात्र चुका कर मूल को अपनी सेवा से चुकाने के लिए पितरों के दरबार में चला गया है। माँ तरकारियाँ लेकर फेरी लगाती है; पर पुत्र को अच्छा नहीं लगता कि जवान आदमी बैठा रहे और बुढ़िया मर–मर कर कमाबे। इसी से शाक–तरकारियों के तत्ववेत्ता ताऊ से यहाँ की चर्चा सुन, वह काम की खोज में निकल पड़ा है।

ऐसे आश्यर्च से मेरा कभी साक्षात् नहीं हुआ था। जीवन से अनजान किशोरों की संख्या कम नहीं, जो सुख के साधनों के लिए उस माँ से झगड़ते हैं, जिसकी उँगलियों के पोर सिलाई करते–करते छलनी हो चुके हैं। कुलबन्धुओं के समान आँसू पीने वाले युवकों का अभाव नहीं; जिनका पौरूष न दरिद्र

पिता का सब कुछ छीन लेने में कुण्ठित होता है और ने भिक्षावृत्ति से मूर्छित। अपनी पराजय को विजय मानने वाले ऐसे पुरूषों से भी समाज शून्य नहीं, जो छोटै बच्चों को छोड़कर दिन–दिन भर परिश्रम करने वाली पलियों के उपार्जित पैसों से सिनेमा–घरों की शोभा बढ़ा आते हैं।

साधारणतः आज के पुरूष का पुरूषार्थ विलाप है। जितने प्रकार से, जितनी भाव–भंगियों के साथ, जितने स्वरों में वह अपने निराश जीवन का मर्सिया गा सके, अपनी असमर्थता का स्यापा कर सके उतना ही वह स्तुल्य है और उतना ही अधिक पुरूष नाम के उपयुक्त है।

अन्धी आँखों को आकाश की ओर उठाकर अपने पुरूषार्थ की दोहाई देने वाले अलोपी को ऐसी परम्परा के न्यायालय में प्राण दण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सकता था।

कुछ प्रकृतिस्थ होकर मैंने प्रश्न किया– 'तुम यहाँ कौन–सा काम कर सकते हो ? अलोपी पहले से ही सोच–समझकर आया था'– वह देहात के खेतों से सस्ती और अच्छी तरकारियाँ लायेगा–मेरे लिए और छात्रवास की विद्यार्थिनियों के लिए।

अपने जीवनव्यापी अँधेरेपन में वह ऐसा व्यवसाय में उलझा हुआ कर्तव्य किस प्रकार सँभाल सकेगा, यह पूछने का अवकाश ने देकर अलोपी ने अपने फुफेरे भाई रग्घू की ओर संकेत कर

बताया कि उन दोनों के सम्मिलित पुरूषार्थ के कठिनतम कार्य भी सम्भव होते रहे हैं।

प्रस्ताव अभूतपूर्व था; पर मैं भी कुछ कम विचित्र नहीं, इसी से रग्घू और अलोपी अपने दुर्बल कन्धों पर कर्तव्य का गुरू–भार लाद कर लौटे।

दूसरे दिन सबेरे ही एक हाथ से रग्घू को लाठी का छोर थामे और दूसरे से सिर पर रखी बड़ी–सी छाबड़ी सँभाले हुए अलोपी, 'मालिक हो! मालिक हो!' पुकारने लगा।

मुझे क्या–क्या पसंद है यह जानने के लिए जब वह अनुनय–विनय करने लगा, तब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ी। कुछ तरकारियाँ डाक्टरों ने मेरे पथ्य की सूची में नहीं रखी हैं और शेष के लिए सदा से यही नियम रहा है कि जो भक्तिन के विवेक को रूचे, वह मुझे स्वीकृत हो। फिर जिस वर्ष में, कुछ महीने दही पर, कुछ फल पर और कुछ खिचड़ी, दलिया आदि पथ्य पर बिताने पड़े हों, वह रूचि के सम्बन्ध में वीतराग हो ही जाता है। पर अलोपी को निराश न करने के लिए मैंने वह सब ले लिया, जिसे वह मेरे लिए ही लाया था। पैसे देते समय अलोपी ने कहा–वह महीने पर लेगा। जब मैंने अपने भूल जाने की सम्भावना और हिसाब लिखने की विरक्ति की व्याख्या आरम्भ की, जब उसने बहुत विश्वास के साथ समझाया कि वह दस तक पहाड़े और पहली किताब के विद्वान ताऊ की सहायता से मेरा हिसाब ठीक रखेगा। छात्रावास का वहाँ की मेट्रन रखेंगी ही। वहाँ इस युगल मूर्ति को लेकर जो

विनोदात्मक कोलाहल मचा, उसके सम्बन्ध में ‘गिरा अनयन नयन बिनु बानी’ कहना ही ठीक होगा; पर दो–चार दिन में ही अलोपी सबकी ममता का पात्र बन गया। उसे जो स्वच्छन्दता प्राप्त थी, वह दूसरे नौकरों को मिल ही नहीं सकती थी। मेस के लिए आँगन के एक कोने में वह पैर फैलाकर बैठता और तौलकर लाई हुई तरकारी फिर वहाँ के बड़े तराजू पर तौलने लगता। उसका स्पर्श–ज्ञान इतना बढ़ गया था कि लौकी, कद्दू, कटहल आदि को हाथ में लेते ही वह उनका तौल बता देता था। तुलाते–तुलाते वह शाक तरकारियों के प्रकार और खेतों के सम्बन्ध में, महराजिन, बारी आदि को न जाने कितना ज्ञातव्य बताता चलता था। प्रायः छोटी बालिकाएँ उसे घेर कर चिड़ियों की तरह चहकती ही रहती थीं। उनके लिए वह अमरूद, बेर आदि भी लाने लगा, जिनके दाम के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। एक दिन जब कालेज के फल वाले ने शिकायत की कि अन्धा फल लाकर बच्चों को बाँटता है, जिससे उसके व्यापार को हानि पहुँचती है, तब मैंने अलोपी से पूछा। उसने दाँत से जीभ की नोक दबाकर सिर हिलाते हुए जो उत्तर दिया, उसका भावार्थ था कि दाम उसे मिल जाता है। फिर वह स्कूल के समय तो आता नहीं, अतः फल वाले की उससे क्या हानि हो सकती है!

बालिकाएँ न अलोपी को झूठा ठहरा सकती थीं, न मेरे सामने झूठ बोल सकती थीं; अतः वे मौन रहीं। मेरे अनुचित–उचित सम्बन्धी व्याख्यान के उत्तर में अलोपी ने मैली

पिछौरी के छोर से धुँधली आँखें पोंछते–पोंछते बताया कि उसकी एक आठ–नौ वर्ष की चचेरी बहिन मर चुकी है। इन बालिकाओं के स्वर में उसे बहिन की भ्रान्ति होने लगती है, इसी से अपनी दरिद्रता के अनुरूप दो–चार अमरूद, बेर, जामुन आदि ले आता है। उसके देहात में तो ऐसी चीजों का कोई दाम नहीं लेता, फिर वह कैसे जानता कि शहर में ऐसे देना बुरा माना जाता है। दाम देकर खरीदता, तो लेना किसी तरह उचित भी हो सकता था। पर वे फल उसे तरकारियों के साथ घलुए में मिल जाते हैं। इनसे पैसे बनाने की बात सोचकर उसका मन जाने कैसा–कैसा होने लगता है। उन्मुख अलोपी के मुख का भाव देखकर मैं अपने डपोरशंखी न्याय का महत्व समझ गयी और तब मेरा मन अपने ऊपर ही खीझ उठा। कहना व्यर्थ है कि अलोपी को अपने सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं करना पड़ा।

अलोपी के नेत्र नहीं थे, इसी से सम्भवतः वह न प्रकृति के रौद्र रू�														 से भयभीत होता था और न उसके सौन्दर्य से बहकता था। मूसलधार वृष्टि जब बर्फ के तुफान की भ्रान्ति उत्पन्न करती, बिजली जब लपंटों के फव्वारे–जैसी लगती और बादलों के गर्जन में जब पर्वतों के बोलने का आभास मिलता, तब रग्घू तो चलते–चलते बाहर से आँखें छिपा लेता, पर भीगे चिथड़े के गुड्डे के समान अलोपी नाक की नोक से चूते हुए पानी की चिन्ता न कर, भीगी उँगलियों से फिसलती लाठी थामे और हरे खेत के खण्ड जैसी छाबड़ी सँभाले इस तरह पाँव रखता, मानो उन्हें आज ही पृथ्वी का पूरा परिचय प्राप्त करना

है। एक बार भी कीचड़ में पैर पड़ जाने पर रग्घू की खैर न थी, क्योंकि अलोपी आँख वाले के पथ–प्रदर्शन में ऐसी भूल अक्षम्य समझता था। जब शीत बर्फीले तारों का व्यूह–सा रच देती और पक्षाघात की साँस–जैसी हवा बहती, तब रग्घू पतले कुरते में मृगी के रोगी के समान हिलता और दाँत बजाता चलता; पर अलोपी सारी शक्ति से ठिठुरे ओठों के कपाट बन्द किए और सर्दी से नीले नाखून और ऐंठी उँगलियों वाले पैरों को तोल–तोलकर रखता हुआ आता। ग्रीष्म में जब धूल ऐसी जान पड़ती, मानो कोई पृथ्वी को पीस–पीस कर उड़ाये दे रहा है और लू जलते हुए व्यक्ति की तरह चीत्कार करती हुई, इस कोने से उस कोने में दौड़ती फिरती, तब हाथ में आँखों पर ओट किये हुए रग्घू के जल्दी–जल्दी उठते हुए पैर मुझे भाड़ में नाचते हुए दानों का स्मरण दिलाते थे। पर अलोपी पलकें मूँदकर आँखों के अंधकार को भीतर ही बन्दी बनाता हुआ अपने हर पग को इतनी धीरता से जलती धरती पर रखता था, मानो उसके हृदय की ताप नापता हो। बसन्त हो या होली, दशहरा हो या दीवाली, अलोपी के नियम में कोई व्यतिक्रम कभी नहीं देखा गया।

एक बार जब अपनी लम्बी अकर्मण्यता पर लज्जित हमारे हिन्दू–मुस्लिम भाई वीरता की प्रतियोगिता में सक्रिय भाग ले रहे थे, तब अलोपी पहले से दुगनी बड़ी डलिया में न जाने क्या–क्या भरे और एक बड़ी गठरी रग्घू की पीठ पर भी लादे, सुनसान रास्ते से आ पहुँचा। उसके दुस्साहस ने मुझे विस्मित ने करके क्रोधित कर दिया। 'तुम हृदय के भी अन्धे हो, ऐसी

अँधेरी गलियों में प्राण देकर कुछ स्वर्ग नहीं पहुँच जाओगे' आदि–आदि स्वागत–वचनों के उत्तर में अलोपी बैंगन–लौकी टटोलने लगा। मेरे आँगन में तरकारियों का टीला निर्माण कर, वह वैसे ही मूक–भाव से छात्रावास की ओर चल दिया। वहाँ से लौटकर जब वह सूखी आँखें पोंछता और ठिठकता–सा सामने आ खड़ा हुआ, तब मेरा क्रोध बरस कर मिट चुका था और मन में ममता की सजलता व्याप्त थी!

मेरे कण्ठ में आश्वासन का स्वर पहचानकर उसने रूक–रूक कर बताया कि वह दो दिन के लिए तरकारियाँ ले आया है। मेट्रन से उसे ज्ञात हो गया था कि उनके भंडार–घर के अचार समाप्त हो चुके हैं और बड़ियों में फफूँदी लग गई है। केवल दाल से तो अलोपी जैसे व्यक्ति ही रोटी खा सकते हैं, अतः वह देहात से यह सब खरीद कर बेचता–बेचता यहाँ आ पहुँचा। उस बिना आँखों वाले आदमी को कौन सतायेगा; पर जब मेरी आज्ञा नहीं है, तब वह घर से बाहर पैर नहीं रख सकता। अब दो दिन के लिए चिन्ता नहीं है, फिर तब तक यह झगड़ा समाप्त हो ही जायेगा। अलोपी को ऐसे समय भी रोक रखना सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि बूढ़ी माँ की रक्षा का भार उस पर था।

मैं बरामदे में हूँ या नहीं, यह अलोपी देख न सकता था; पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने आते–जाते उस दिशा में नमस्कार न कर लिया हो।

अनेक बार मैंने खाली डलिया के साथ नीम के नीचे बैठे अलोपी को भक्तिन से बहुत मनोयोग पूर्वक बातें करते देखा था। वार्तालाप का विषय भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहता था। मुझे करेला अच्छा लगता है या कटहल, कचनार की कली पसन्द है या सहजन की फली, मेथी का साग रूचिकर होता है या पालक का, मीठा नींबू लाभदायक है या सन्तरा, आदि प्रश्नों पर गम्भीरता से वाद–विवाद चलता।

एक बार की घटना अपनी क्षुद्रता में भी मेरे लिए बहुत गुरू है। मैं ज्वर से पीड़ित थी। कई दिनों तक बरामदे को नमस्कार कर अलोपी ने रग्घू से कहा–जान पड़ता है इस बार गुरूजी बहुत गुस्सा हो गयी हैं। पहले की तरह कुछ पूछती ही नहीं; पर जब उसे ज्ञात हुआ कि मैं बीमारी के कारण बाहर आ ही नहीं सकती, तब वह बहुत चिन्तित हो उठा।

दूसरे दिन सन्देश मिला कि अलोपी मुझे देखने की आज्ञा चाहता है। उतने कष्ट के समय भी मुझे हँसी आये बिना न रह सकी। अन्धा अलोपी असंख्य बार आज्ञा पाकर भी मुझे देखने में समर्थ कैसे हो सकता था। पर अलोपी भीतर आया और नमस्कार कर टटोलता–टटोलता देहली के पास बैठ गया। फिर अपनी धुँधली, शून्य आँखों की आर्द्रता बाँह से पोंछकर पिछौरी के एक छोर में लगी गाँठ खोलते हुए उसने अपराधी की मुद्रा से बताया कि वह स्वयं जाकर अलोपी देवी की विभूति लाया है। एक चुटकी जीभ पर रख ली जाय और एक माथे पर लगा ली जाय, तो सब रोग–दोष दूर हो जायगा। कहने की इच्छा

हुई—जब देवी तुम्हारा ही पूरा न कर सकीं, तब मेरा क्या करेंगी; पर उनके वरदान की गम्भीरता ने मुख से कुछ न निकलने दिया। अलोपीदेवी की दिव्यता प्रमाणित करने के लिए अलोपीदीन का कर्तव्य में वज्र और ममता में मोम के समान हृदय ही पर्याप्त होना चाहिए। उसके निकट जिसका परिचय परिचय स्वर—समूह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, उस व्यक्ति के प्रति इतनी सहानुभूति भूलने की वस्तु नहीं।

अलोपी को हमारे यहाँ आये तीसरा वर्ष चल रहा था। उसका कुछ भरा हुआ—सा कंकाल कुरते से सज गया, सिर पर जब—तब साफा सुशोभित होने लगा और ऊँची धोती कुछ नीचे सरक आयी साधारणतः महीने में 80 रु. से कुछ अधिक की ही शाक—तरकारियाँ आती थीं। दाम चुकाकर और रग्घू को कुछ देकर भी अलोपी के पास इतना बच रहता था, जिससे वह अपनी माँ के साथ सुख से रह सके। और एक दिन तो रग्घू ने हँसते—हँसते बताया कि दादा का रुपया उसकी माई गाड़कर रखने लगी है।

अलोपी के अँधेरे जीवन का उपसंहार भी कम अन्धकारमय न हो, इसका समुचित प्रबन्ध विधाता कर चुका था। एक दिन मेरे निकट बैठकर अपने—आप से संसार—चर्चा करती हुई भक्तिन ने सुनाया—अलोपी अपना घर बसा रहा है। मैं इतनी विस्मित हुई कि भक्तिन की कथाओं के प्रति सदा की उपेक्षा भूलकर क्या कह उठी और तब भक्तिन ने उसी प्रसन्न—मुद्रा में मेरी ओर देखा, जिससे भीष्म ने रथ का पहिया

ले दौड़ने वाले कृष्ण को देखा होगा। पता चला, उसके कथन का प्रत्येक अक्षर बिना मिलावट का सत्य है।

एक काछिन, जो दो पतियों को मुक्ति दे आई है, अन्धे के लिए स्वर्ग की रचना करना चाहती है; पर अलोपी की माँ अपने वरदान में मिले पुत्र को अब फिर दान में देना स्वीकार नहीं करती।

गर्मियों की छुट्टियों के बाद लौटकर सुना कि अलोपी की माँ अलग रहने लगी और नयी पत्नी ने आकर घर सँभाल लिया। फिर एक बार उसे देखने का अवसर भी मिला। मझोले कद की सुंगठित शरीर वाली प्रौढ़ा थी। देखने में साधारण–सी लगी; पर उसके कण्ठ में ऐसा लोच और स्वर में ऐसा आत्मीयता भरा निमन्त्रण था, जो किसी को भी आकर्षित किये बिना नहीं रहता, और कुछ विशेष चमकदार आँखों में चालाकी के साथ–साथ ऐसी कठोरता झलक जाती थीं, जो उस पर विश्वास करना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य कर देती थी। अलोपी उसे कण्ठ–स्वर से ही जानता था, इसी से कदाचित् वह विश्वास कर सका।

रग्घू घर का भेदिया था; इसी से सब जान गये कि उसकी नई भौजी को रुपये की चर्चा के अतिरिक्त और कोई चर्चा नहीं सुहाती। कभी वह जानना चाहती है कि अलोपी ने गाढ़े दिन के लिए कुछ बचा रखा है या नहीं, कभी पूछती है कि उसके पछेली और झुमके किस कोने में गाड़कर रख दिए जायँ।

अलोपी इस ढहते हुए स्वर्ग में छः महीने रह सका। फिर सुना कि उसकी चतुर पत्नी सब कुछ लेकर उसे माया–पाश से सदा के लिए मुक्ति दे गई है। वह बेचारा तो कई दिन तक विश्वास ही न कर सका।

जब परोपकारी पड़ोसियों ने उसके विश्वास की शिला को युक्तियों की एक–से–एक मर्म भेदी सुरंगों से उड़ा दिया, तब वह बीमार पड़ गया। पर, निरन्तर कर्मयोग से दीक्षित पुलिस को यह शुभ समाचा देने की चर्चा चलते ही वह प्रशान्त निराशा–भरी दृढ़ता से कहने लगता–'अपनी स्त्री की हुलिया लिखवाकर पकड मँगाना नीच का काम है।'

अलोपी कुछ अच्छा होने पर आने लगा; पर उसमें पहले जैसा जीवन नहीं रह गया था। पैर घसीट–घसीट कर चलता, हाथ से लाठी छूट–छूट पड़ती। एक बार मेंरे बरामदे की दिशा में नमस्कार करते समय छाबड़ी नीचे आ रही। अलोपी के सब साहस, सम्पूर्ण उत्साह और समस्त आत्मविश्वास को संसार का एक विश्वास घात निगल गया है, यह सत्य होने पर भी कल्पना–जैसा जान पड़ता है।

अन्धे का दुःख गूँगा होकर आया था, अतः सान्त्वना देने वाले उसके हृदय तक पहुँचने का मार्ग ही न पा सकते थे। मेरे बोलते ही वह लज्जा से इस तरह सिकुड़ जाता, मानो उसके चारों ओर ओले बरस रहे हों, इसी से विशेष कुछ कह–सुनकर उसका संकोचजनित कष्ट बढ़ाना मैंने उचित न समझा। पर, अपने अपराध से अनजान और अकारण दण्ड की कठोरता से

अवाक् बालक—जैसे अलोपी के चारों ओर जो अँधेरी छाया घिर रही थी, उसने मुझे चिन्तित कर दिया था।

उसकी माँ बड़ी मानता से प्राप्त अन्धे पुत्र का सब अपराध भूल गयी थी, पर हठी पुत्र ने अपने—आपको क्षमा नहीं किया, अतः उन दोनों का वह करुण—मधुर अतीत फिर न लौट सका।

मैं दशहरे का अवकाश घर ही पर बिता रहीं थी। अलोपी एक दिन तरकारियाँ देकर सन्ध्या समय तक मेस ही में बैठा रहा। कभी बड़ी ममता से तराजू को छूकर देखता, कभी बड़े स्नेह से पूसी की धनुषाकार पीठ को सहलाता और कभी विनोद से छोटी बालिकाओं को चिढ़ाने लगता। फिर जाते समय मेरी कुत्ती फ्लोरा को अपनी पिछौरी में बँधे मुरमुरे देकर, हिरनी सोना को मूली की पत्तियाँ खिलाकर और मेरे बरामदे को नमस्कार कर जो गया, तो कभी नहीं लौटा।

तीसरे दिन रोने से सूजी आँखों वाले रग्घू ने समाचार दिया कि उसका अन्धा दादा बिना उसे साथ लिए ही न जाने किस अज्ञात लोक की महायात्रा पर चल पड़ा।

ऐसे ही अचानक तो वह यहाँ भी आ पहुँचा था, इसी से विश्वास होता है कि वह बिना भटके ही अपने गन्तव्य तक पहुँच जायेगा।

बालक रग्घू के लिए दूसरे काम का प्रबन्ध कर मैंने अलोपी के शेष स्मारक पर विस्मृति की यवनिका डाल दी है;

पर आज भी देहली की ओर देखते ही मेरी दृष्टि मानो एक छायामूर्ति में पुंजीभूत होने लगती है। फिर धीरे–धीरे उस छाया का मुख स्पष्ट हो चलता है। उसमें मुझे कच्चे काँच की गोलियाँ जैसी निष्प्रभ आँखें भी दिखाई पड़ती हैं और पिचके गालों पर सूखे आँसुओं की रेखा का आभास भी मिलने लगता है। तब मैं आँखें मल–मल कर सोचती हूँ–नियति के व्यंग से जीवन और संसार के छल से मृत्यु पाने वाला अलोपी क्या मेरी ममता के लिए प्रेत होकर मँडराता रहेगा ?

• • • • •

4. आवाज़ का नीलाम

धर्मवीर भारती

लेखक परिचयः—प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रमुख कवि धर्मवीर भारती हिन्दी साहित्य में उपन्यास, कहानी, नाटक तथा एकांकी के क्षेत्र में भी अग्रणी पंक्ति में माने जाते हैं। इन्हें मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने वाले आलोचक भी माना जाता है। "सरस्वती" के बाद हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक सेवा करने वाली पत्रिका "धर्मयुग" का भारती जी ने कई वर्षों तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया है। भारतीजी के साहित्य की विशेषता है कि वे अपने व्यक्तिगत जीवन की गहराइयों में प्रवेश कर उसके आन्तरिक तथ्य को पकड़ने का प्रयास करते हैं।

भारती जी ने गुनाहों का देवता, सूरज का सातवाँ घोड़ा आदि उपन्यासों की रचना करने के साथ—साथ बन्द गली का आखिरी मकान तथा गुलकी बन्नो जैसी बहुचर्चित कहानियों का भी सृजन किया है। नाटककार के रूप में उनका विशेष सम्मान है। उनके अन्धा युग काव्य नाटक ने हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में नया अध्याय ही लिख दिया है। भारतीजी दूसरा सप्तक के प्रमुख कवि हैं। उनकी काव्य—कृतियों में सात गीत वर्ष, ठंडा लोहा, नन्दी प्यास थी, सपना नहीं आदि प्रसिद्ध हैं।

'आवाज का नीलाम' एकांकी में भारतीजी ने पूँजीपति वर्ग किस प्रकार मानव की भावनाओं का फायदा उठाकर अपना

स्वार्थ पूरा करते हैं, इसका चित्रण किया है। एक ओर पत्रकारिता को जनतंत्र का रक्षक माना जाता है किन्तु इसी पत्रकारिता से जुड़े लोगों के जीवन की त्रासदी का अनुचित लाभ पूँजीपति उठाते हैं और इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा एक प्रकार से लोकतन्त्र पर ही अपना अधिकार जमाना चाहते हैं।

पात्र–परिचयः– **दिवाकर :– एक पत्रकार**

बाजेरिया :– एक सेठ

....

घटना कालः 1947 में स्वतन्त्रता मिलने के बाद।

'आवाज़' सम्पादक दिवाकर का कमरा। एक तरफ एक तख्त। बड़ी–सी मेज पर अखबार, कागज, सोख्ता, पिन–कुशन, ऐशट्रे, टेबल – कैंलेंडर वगैरह बहुत अस्त–व्यस्त हालत में। कागज बिखरे हैं, पेपर–वेट ऐशट्रे पर रखा है, पिन–कुशन खाली है, पिनें मेज पर पड़ी हैं, सिगरेट की राख पिन–कुशन के पास इकट्ठा है। बगल में एक तिपाई पर टेलीविजन रखा है।

मेज के पीछे दीवार पर सुभाष बोस का बहुत भव्य चित्र लगा है, जो गर्द और मैले से धुँधला पड़ गया है। तसवीर के नीचे ही दीवार में साप्ताहिक "आवाज़" की फाइल टँगी है। एक दूसरी कील पर दिवाकर का कोट।

(मेज पर पैर फैलाए हुए दिवाकर अपनी कुर्सी पर बैठा है। मैला पैंट, कमीज के बटन खुले हुए, सिगरेट ऐश–ट्रे के सहारे रखी हुई सुलग रही है। बाल बिखरे हुए, कालर अस्त–व्यस्त, सिर कुर्सी की पीठ पर टिका हुआ, आँखों छत पर टिकी हुई, सूनी–सूनी विचित्र–सी मुद्रा। सामने ही एक छोटा–सा जापानी ट्वाय–पियानो रखा है जिसे वह अपने फाउण्टेनपेन से टुनटुना रहा है। लम्बी–लम्बी गहरी साँसे, उचटा–उचटा हुआ–सा अमंगल वातावरण। सहसा टेलीफोन की घंटी बज उठती है। वह चोंगाा हाथ में उठा लेता है।)

दिवाकरः हलो....कौन, बोजोरिया जी... हाँ यही हूँ।...नहीं अस्पताल नहीं गया, ऑपरेशन तो सुबह हुआ था.....जी, जब मैं आया तब तो वाइफ को नींद आ गई थी.....हाँ आज भर खतरा है....देखें क्या होत है...हाँ, आप आइए....हाँ, हाँ कोई बात नहीं. .. अच्छा अच्छा.....मैं यही हूँ, बड़ी कृपा। **(टेलीफोन रख देता है, दाँत पीसकर टेलीफोन की ओर देखता हुआ)** कृपा! बेईमान, कमीना, मैं खूब समझता हूँ तुम्हारी कृपा। आज 10 साल से जब मैंने अपनी एक–एक हड्डी जलाकर अखबार निकाला; सरकार से लड़ा, सेठों से लड़ा, जमानतें दीं, घर बिक गया, बीवी सूखकर कंकाल हो गई, तब किसी ने दया नहीं दिखाई। मैंने किसी के सामने सिर झुकाना ही नहीं सीखा था। आज जब अखबार बेच रहा

हूँ तो दिन में तीन–तीन मर्तबा टेलीफोन से पूछा जाता है। कितनी चिन्ता है सेठ बाजोरिया को। पाँच मिनट में आ रहे हैं, **(गहरी साँस लेकर)** पाँच मिनट **(पेन से पियानो के पर्दे झंकारता है और गिनता जाता है–)**एक...दो.... तीन....चार...पाँच मिनट **(उठकर दीवार पर से "आवाज की फाइल" उतारता है। उसे बच्चों की तरह गोद में लेकर टहलता है।)** बस पाँच–दस मिनट और! उसके बाद तुम मेरे नहीं रहोगे। मैं दस्तखत कर दूँगा और तुम बिक जाओगे। कितनी साध से मैंने तुम्हें निकाला था, कितनी लगन से, कितनी मुसीबतें झेलकर तुम्हें चलाया था। याद है तुम्हें! जब तुम्हारा विशेषांक निकल रहा था और शीला सीढ़ी पर से गिर पड़ी थी, लेकिन मैं उसके पास नहीं था। याद है जब शीला की दवा के रुपये से मैंने सत्तार–प्रेस वाला टाइप खरीद लिया था। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ भूल गया था, अपने को, अपनी फूलों जैसी बच्ची को, अपनी शीला को, महज इसलिए कि तुम मेरी आत्मा की आवाज बन सको, मेरी नंगी–भूखी जनता की आवाज बन सको। सत्य की आवाज बन सको। लेकिन नहीं....अब तुम बाजोरिया की आवाज बनोगे। **(आवेश से)** तुम्हारा नीलाम होगा। **(नीलाम करने वालों की–सी आवाज में)** आवाज, आवाज, जनता की आवाज, आत्मा की

आवाज, सच्चाई की आवाज। नीलामी बोली 6 आना, साढ़े 6 आना, साढ़े 6 आना एक.....साढ़े 6 आना दो.....**(पियानो पर ठुमकी मारता है)** साढ़े 6 आना तीन! **(कुर्सी पर धम्म से बैठ जाता है, गिर–सा पड़ता है। दो क्षण की खामोशी। फिर एक अजीब–सी हँसी, लुटी–लुटी हुई सी.....सहसा फोन की घंटी बजती है। साथ ही बाहर मोटर के आने की, हार्न की और मोटर का दरवाजा बन्द होने की आवाज। वह फोन उठाता है)** हलो...मैं हूँ दिवाकर, कहिए....हाँ...हाँ, अच्छा, शीला जाग गई?....मुझे बुला रही है...ठीक, मैं अभी आया.... हालात ठीक नहीं है? कोई खतरा नहीं। तब ठीक है।...अच्छा, कोई बात हो तो फोन करना... **(इसी बीच सेठ बाजोरिया आते हैं। खद्दरधारी, बहुत स्थूलकाय नहीं। चेहरे पर शालीनता। आते ही पूछते हैं, "कहिए मिस्टर दिवाकर!" फिर दिवाकर को फोन करते देखकर "ओह" कहकर रुक जाते हैं, दिवाकर के संकेत करने पर बैठ जाते हैं।)**

बाजोरियाः **(दिवाकर के फोन कर चुकने पर)** क्या हाल है वाइफ का? **(दिवाकर एक अजीब से तीखे गूस्से और नपुंसक लाचारी से उसकी ओर देखता है, फिर एक अजीब–सी हँसी–हँसकर**

बैठ जाता है। कुछ जवाब नहीं देता। सिर झुकाकर बैठ जाता है और पैन से पियानों को झंकारने लग जाता है।)

बाजोरियाः **(और आगे कुर्सी खिसकाकर, चेहरे पर बहुत आत्मीयता लाकर, स्वर मे बहुत सहानुभूति भरकर)** क्या बात है दिवाकरजी? समथिंग सीरियस?

दिवाकरः कोई बात नहीं सेठ जी! **(गहरी साँस लेकर)** बात क्या होती। मेरी कुछ अजब–सी आदत है। जब मन बहुत परेशान होता है तो यह पियानो बजाने लगता हूँ। जाने क्यों.....लेकिन...आप सोचते होंगे....

बाजोरियाः **(कुछ मुस्कराकर)** नहीं, नहीं, नर्वस–टेन्शन में अक्सर ऐसा होता है, लेकिन यह बच्चों का पियानो?

(हँसता है, दिवाकर भी हँसता है।)

दिवाकरः **(पियानो हटाकर)** क्या बताऊँ? अखबार की दुनिया में रोज खबरें आती हैं। हड़तालों के नारे, लड़ाइयों का शोरगुल, सेनाओं की परेडें; जंगी जहाजों का घर्राटा लेकिन मुझे सब इतने बेमानी इतने खोखले लगते हैं जितने इस बचकाने खिलौने के स्वर। लेकिन कभी–कभी लगता है, इन्हीं ध्वंस और विनाश की आवाजों में कहीं नए इंसान की आवाज का भी निर्माण हो रहा है। मैंने सोचा उस आवाज को जिन्दा रखने के लिए, उसे ऊपर लाने के लिए मैं

अपनी हस्ती को मिटा दूँगा, वही आवाज मेरी जिन्दगी होगी। इसलिए.....

बाजोरियाः शायद इसलिए अपने अखबार का नाम "आवाज" रखा था।

दिवाकरः जी हाँ! और इस आवाज के लिए अपने को बर्बाद कर दिया था, लेकिन जनता इस नए इंसान की आवाज नहीं सुनना चाहती। उसे सच्चाई की आवाज नहीं चाहिए। उसे चाहिए शौख कवर, भड़कीले चित्र, रंग–बिरंगे विशेषांक. ...वह सब जो उसे सेठ बाजोरिया के अखबार में मिलता है।

बाजोरियाः देखिए! यह पर्सनल–रिमार्क आपको शोभा नहीं देता दिवाकर जी, आप मुझे बिलकुल गलत समझ रहे हैं। मेरा कतई यह इरादा नहीं कि मैं जनता को गुमराह करूँ। बात यह है दिवाकरजी की मुझे साहित्य और पत्रकारिता से कुछ इतना लगाव है कि दिन–रात मैं सोचता हूँ कि हमारे यहाँ भी अमरीका की तरह सजे–सजाए अखबार निकलें, सस्ते से सस्ते, सुन्दर–से–सुन्दर। ज्यादा–से–ज्यादा जनता उन्हें पढ़े। उसका सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो।

दिवाकरः सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो? **(व्यंग्य से हँसकर)** इधर तमाम लोगों की सांस्कृतिक स्तर पर सुधारने की बीमारी लगी है। कोई "टाइम्स" खरीद रहा है, तो कोई "लाइम–लाइट?" आम.. ..

बाजोरियाः **(बात काटकर)** मैं भी आवाज खरीदकर वही

करना चाहता हूँ; यही मतलब है न आपका?**(कड़े स्वर से)**मिस्टर दिवाकर! दुनिया भी कितनी स्वार्थी, कितनी एहसान–फरामोश होती है। **(उठकर टहलने लगता है)** आपको जरूरत थी, आपने सन्देशा कहलाया था, आप इस वक्त मदद चाहते थे। और जब मैं आवाज के शेयर खरीदने के लिए राजी हो गया तो आप इस तरह चोटें कर रहे हैं। **(मुड़कर खड़े होकर)** शायद आप समझ नहीं रहे हैं कि आप अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

दिवाकरः **(सुस्त पड़कर, पियानो पर सिर रखकर)** भूल गया था मैं। गरजमन्द मैं हूँ, आप तो ग्राहक हैं। आपकी तो चार बात....

बाजोरियाः **(मेज पर झुककर बड़े मुलायम स्वर में)** नहीं–नहीं मेरा यह मतलब......

दिवाकरः नहीं, मैं समझता हूँ। महीने भर से मेरी पत्नी की बीमारी पर आपने पानी की तरह रुपया बहाया है....

बाजोरियाः **(कुर्सी पर बैठकर)** छिः–छिः दिवाकर जी! ऐसी बातें कहकर जलील न कीजिए। **(बहुत स्नेह के साथ उसका हाथ अपने हाथ में लेकर)** यह मैंने आप पर अहसान नहीं किया है। आपने अपनी जिन्दगी में जितना त्याग किया है, जितनी साधना की है, उसके लिए हमारे दिल में कितनी श्रद्धा है, यह आप समझ भी नहीं सकते।

दिवकरः **(पियानो टुनकारते हुए)** अच्छा है मैं न समझ सकूँ, बाजोरिया जी! अब साधना और तपस्या के दिन भी तो नहीं रह गए। अब कलम की शान और विचारक की आजादी का भी तो कोई अर्थ नहीं रहा। अब तो अगर मैं आपके पत्र में हूँ तो आपका ढोल बजाऊँ, उसके पत्र में हूँ तो...

बाजोरियाः **(थोड़ा अप्रतिभ हो जाता है)** मैं और लोगों की बात नहीं जानता, लेकिन जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, कम–से–कम आपसे मैं इस तरह की बात सुनने की उम्मीद नहीं करता था। पाँच अखबार हैं मेरे। क्या आप बता सकते हैं कि मैंने किसी के सम्पादक पर कभी कोई प्रतिबन्ध लगाया है?

दिवाकरः **(ठंडे फौलाद के से स्वाद में)** बाजोरियाजी, किसी आदमी का सबसे बड़ा गुनाह यह है कि वह दूसरे आदमी को अपने बारे में सच बोलने के लिए मजबूर कर दे।

बाजोरियाः (भौंह सिकोड़कर) क्या मतलब?

दिवाकरः क्या मतलब?...**(तैश से)** क्या आप कह सकते हैं कि आपने प्रतिबन्ध नहीं लगाया है? चैटर्जी ने उस दिन गृहमन्त्री के वक्तव्य पर टिप्पणी लिखी थी। उस पर किसने चैटर्जी को कमरे में बुलाकर डाँटा था?

बाजोरियाः **(तैश में मेज पर हाथ पटककर)** यह गलत बात ळें

दिवाकरः यह सही बात है। आप जानते हैं, जब चैटर्जी

को 60 रुपये मिलते थे तब वह सम्पादकीय लिखता था, आज जब आप उसे ढाई सौ दे रहे हैं तब वह डिक्टेशन लिखता है। आपका डिक्टेशन, जिसने अपनी जिन्दगी में सिवा बहीखाते के कुछ भी न लिखा होगा....

बाजोरियाः लेकिन....

दिवाकरः लेकिन क्या? आप मालिक हैं, आप उसे डाँट सकते हैं, उसे जिसके बाल अखबार नवीसी में सफेद हो चुके हैं।

बाजोरियाः **(दोनों मुट्ठियाँ बाँधकर, बड़ी खीझ से)** मुझे अफसोस है मिस्टर दिवाकर कि आप भी अधकचरे साम्यवादियों की तरह बातें करने लगे हैं। हर चीज को एक ही पहलू से आप क्यों देखते हैं? अगर मैंने चैटर्जी को डाँटा भी तो उसमें पूँजीवादी नीति तो नहीं थी।

दिवाकरः **(बड़े तीखे व्यंग्य से)** नहीं जी, उसमें गाँधीवादी अध्यात्म था।

बाजोरियाः दिवाकर जी, **(उठकर टहलने लगता है)** उसमें गाँधीवादी अध्यात्म नहीं, लेकिन कम–से–कम वैयक्तिक सम्बन्धों की बात तो जरूर है। गृह–मन्त्री मेरे मित्र हैं। क्या आप चाहेंगे कि आपके पत्र में आपके मित्रों की बुराई निकले?

दिवाकरः ओफ्फोह! आज गृह–मन्त्री आपके मित्र हैं, लेकिन सन् 42 में गृह–मन्त्री आपके मित्र नहीं थे, जब पुलिस उन्हें हथकड़ियाँ पहनाकर आपके दरवाजे से ले गई थी! उस दिन आप उनसे दौड़कर गले नहीं मिले थे.....उस दिन तो

आप मिलीटरी के लिए ठेका ले रहे थे और आपके अखबार अंग्रेजी सरकार का विज्ञापन छाप रहे थे कि कांग्रेस वाले गुंडे हैं। कम–से–कम चैटर्जी ने गृहमंत्री को गुंडा तो नहीं लिखा था।

बाजोरियाः **(टहलते–टहलते)** चैटर्जी की बात जाने दीजिए दिवाकर जी, उसके साथ सैंकड़ों बातें हैं। असलियत समझना दूसरी बात है, व्यंग्य करना दूसरी बात। अगर आपका कोई अखबार होता....

दिवाकरः गोया वह आपका अखबार है!

(टेलीफोन की घण्टी बजती है।)

बजोरियाः ओह माफ कीजिएगा; मैं भूल गया था।

दिवाकरः नहीं, नहीं भूल गया था बाजोरिया जी **(टेलीफोन की घण्टी)** मैंने आपको बुलाया था कि आज अखबार बेच ही दूँगा। लेकिन नहीं, भीख माँगकर अखबार निकालूँगा, फर्नीचर बेचकर अखबार निकालूँगा, अपने खून से छापूँगा, लेकिन आपके हाथ नहीं बेचूँगा। **(टेलीफोन की घण्टी, तैश में रिसीवर उठाकर फिर पटक देता है)** नहीं बेचूँगा। मैं आपका रुपया एक–एक पाई चुका दूँगा...**(फिर टेलीफोन की घण्टी)**

बाजोरियाः (बात काटकर) दिवाकर जी, आप मुझे गलत समझ रहे हैं।

दिवाकरः मैं खूब समझने लगा हूँ। आप लोगों को!

(फिर टेलीफोन की लम्बी रिंग, झल्लाकर उठाता है। हाथ से ठोकर लगाकर पियानो गिरता है) उफ, ये भी कमबख्त आफत है। **(जोर से झल्लाकर)** जी हाँ....जी हाँ....कह तो दिया, जी हाँ... **(कड़वे स्वर से)** क्या? **(सहसा मुखमुद्रा एकदम बदल जाती है)** नाड़ी डूब रही है....**(बहुत भयभीत स्वर में)** बहुत खतरा है...व्यग्र स्वर में कै फायल लेता आऊँ...तीन इन्जेक्शन? मैं अभी लेकर आया...किसी तरह बचाइए उसे डॉक्टर साहब....सुनिए, सुनिए... **(निराश होकर फोन रख देता है–कुछ सोचते हुए)** तीन फायल....उन्तालीस रुपया और एक सौ पचीस हु....अ....एक सौ चौवन...नहीं एक सौ चौंसठ।

बाजोरिया: **(पास आकर)** कैसी हालत है वाइफ की दिवाकर जी?

दिवाकर: **(बिना सुने हुए, उसी धुन में)**मेरे पास कुल है **(खड़े होकर, जेब में हाथ डालकर)** अरे कहाँ गए रुपये?

(सारी मेज छान डालता है, फिर घड़ी देखता है, फिर ड्राअर में देखता है। फिर बिल्कुल स्तब्ध–सा खड़ा हो जाता है।)

बाजोरिया: आप परेशान क्यों हैं?

(जेब से नोटों का बंडल निकालता है, दिवाकर उधर ध्यान नहीं देता, स्तब्ध खड़ा है, फिर दाँत पीसकर माथा ठोंकता है।)

बाजोरियाः दिवाकरजी आप क्या कर रहे हैं। लीजिए, ये हैं रुपये, बाहर कार खड़ी है। **(कन्धे पर हाथ रखकर)** चलिए, जल्दी अस्पताल चलें। **(दिवाकर बिल्कुल पत्थर की तरह खड़ा रहता है। जैसे वह संज्ञाशून्य हो, चेतनाहत हो, फिर मुड़कर कोट को उतारकर पहनता है, फिर सेठजी की ओर बड़ी कातर निगाहों से देखता हुआ, जैसे अभी रो देगा..)**

दिवाकरः हालत...उसकी हालत ठीक नहीं है सेठजी....

बाजोरियाः **(घड़ी देखकर)** जल्दी कीजिए।

दिवाकरः **(पास आकर, बहुत पास आकर, सेठजी के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर)** आप देवता हैं, आप देवता हें सेठजी! मैं पागल हूँ, मैं पागल हो गया था। अखबार आपका है। पहले मैं कागजों पर दस्तखत कर दूँ।

बाजोरियाः छिः आप कैसी बात करते हैं। मैं अखबार नहीं.. ..

दिवाकरः **(बात काटकर चीखकर)** मैं तो अखबार बेचूँगा। आपने....आपने कितना किया है मेरे लिए। आपने शीला की जान बचाई है और मैं आप पर अविश्वास करता हूँ **(चीखते और दाँत पीसते हुए)** मैं अहसान फरामोश नहीं हूँ लाइए, कागज लाइए।

(बाजोरिया कागज निकालकर देता है। दिवाकर बैठ जाता है। कागज खोलकर देखता है, फिर दस्तखत करता है। आवेश से

शान्त–सा पड़ गया है। एक निगाह उठाकर बाजोरिया की ओर देखता है, फिर बड़ी–दर्द भरी मुस्कराहट..।).

दिवाकरः **(हाथ उस स्थान पर बढ़ाते हुए जहाँ पर पियानो रखा था)** दूसरा कागज? **(पेन से टुन्कारता है, पर पियानो न पाकर कहता है)**–अरे! मेरा पियानो कहाँ गया? **(बाजोरिया उधर इशारा करता है, झुककर नीचे देखता है, फिर हँसकर)** डैम इट, कहाँ है दूसरा कागज?

(पैर से पियानो को ठुकरा देता है। बाजोरिया दूसरा कागज देता है, दिवाकर दस्तखत करता है। फोन की घण्टी बजती है। दिवाकर दस्तखत करके कागज फिर पढ़ता है। फोन की घण्टी फिर बजती है। वह कागज मेज पर रख देता है। रिसीवर उठाता है। बाजोरिया कागज उठाकर अपने हाथ में लेकर पढ़ने लगता है–)

बाजोरियाः **फोन पर** हलो...हाँ हाँ, कहिए न....मैं ही हूँ.... माई गॉड! **टेलीफोन पटककर उछल पड़ता है। बहुत ही उल्लास से–**बाजोरिया! बाजोरिया जी, कितना दयावान है ईश्वर! कैसे मौके पर बाँह पकड़ता है। मेरी मुसीबतें खत्म हो गयीं दोस्त! मैं अब आवाज नहीं बेचूँगा **(दाँस पीसकर)** माई वाइफ इज डेड!

दिवाकर : **(ऊँचे गले से)** मैं सच कह रहा हूँ, बाजोरियाजी। अभी उसका हार्ट फेल हो गया। **(गहरी साँस लेकर)** अब आवाज बेचने

की जरूरत नहीं।

बाजोरियाः आप पागल हो गए हैं? वह तो आप बेच चुके हैं, बैनामा मेरे पास है। चलिए जल्दी अस्पताल।

दिवाकरः **(झट से मुड़कर रमेज की ओर देखता है)** कहाँ गए कागजात? लाओ उन्हें। मैं नहीं बेचूँगा। शीला की कसम, मैं नहीं बेचूँगा।

बाजोरियाः **(उन्हें जेब में रखकर)** आप पागल हो गए हैं।

दिवाकरः **(चीखकर)** हाँ पागल हो गया हूँ। **(पियानों जैसे मारने के लिए उठाकर)** सीधे से दे दो वरना....

(खींचकर फेंकता है। बाजोरिया भयभीत होकर पीछे उछल जाता है, पियानो अलग जा गिरता है।)

बजोरियाः आप पागल...**(दरवाजे की ओर भागता है, दिवाकर भी...)**

दिवाकरः **(और चीखकर)** हाँ मैं पागल हो गया हूँ **(भागता है, चीखता हुआ)** मेरे कागज दे दो, मैं आवाज नहीं बेचूँगा...

(नेपथ्य में मोटर के स्टार्ट होने और कार का दरवाजा बन्द होने की आवाज....)

(पर्दा गिरता है)

5. अग्नि की उड़ान

डॉ.ए.पी.जे.अब्दुल कलाम

–अरूण तिवारी

लेखक परिचयः–विश्व स्तर पर परमाणु–सशक्त प्रदेशों में एक विशेष स्थान दिलवाने का श्रेय–प्राप्त अबुल पाकिर जैनुलाब्दीन अब्दुल कलाम का जन्म 16 अक्तूबर,1931 को तमिल नाडु में एक साधरण मुसलमान परिवार में हुआ। अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए इन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त की। इसके पश्चात् विदेश से अनेक आकर्षक प्रस्तवों को ठुकराते हुए इन्होंने हि.ए.लि.,डी.आर.डी.ओ तथा इस्रो में वैमानिकी अभियंता के रूप में सेवारत रहते हुए देश–प्रेम का परिचय दिया है। प्रक्षेपास्त्र (Ballistic Missile) तकनीक तथा अंतरिक्ष रॉकेट तकनीक के विकास में अपने अभूतपूर्व योगदान के कारण इन्हें "मिसाइल मैन ऑफ इंडिया" की उपाधि से अमिहित किया गया। सन् 1998 ई. में भारत द्वारा किए गए पोखरन–2 परमाणु परीक्षा में केन्द्रीय भूमिका निभाई। सन् 2002–2007 तक भारत के 11 वें राष्ट्रपति के पद पर सेवारत रहे तथा "जनता के राष्ट्रपति" कहलाए। संगीत एवं धर्म शास्त्रों में इनकी गहरी पैठ है। सन् 1981 ई. को पद्मभूषण सन् 1990 ई. को पद्मविभूषण तथा 1997 को भारतरत्न की सर्वोत्कृष्ट उपाधियों से सम्मानित किया गया।

इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी हैं जो मूलतः अंग्रेजी में हैं– विंग्स ऑफ फायर आत्मकथा, इग्नाइटेड माइन्ड्स तथा इंडिया 2020। इन तीनों में इनकी आत्मकथा विंग्स ऑफ फायर हिन्दी में अग्नि की उड़ान नाम से अनूदित है।

इनके व्यक्तित्व की सरलता एवं सादगी, धार्मिक सहिष्णुता एवं मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणा–स्त्रोत बनकर उपलब्धित होता है।

अरूण तिवारीः अरूण तिवारी जी ने हैदराबाद में स्थित डी.आर. डी.एल. में डॉ.अब्दुल कलाम के निर्देशन में एक दशक से अधिक समय तक कार्य किया है। संप्रति वे हैदराबाद में स्थित हृदयतंत्र प्रौद्योगिकी संस्थान (सी.वी.टी.आई) के निदेशक हैं। जहाँ वे स्वदेशी रक्षा तकनीक के प्रयोग से कम लागत की चिकित्सा तकनीकियों को विकसित करने में लगे हैं। डॉ. कलाम के विचारों की गहराई एवं व्यापकता से सम्मोहित तिवारी जी के लिए इस पुस्तक का लेखन कार्य एक तीर्थ–यात्रा के समान था।

....

रामनाथपुरम् के श्वाटर्ज हाई स्कूल में मन लग जाने के बाद मेरे भीतर का पंद्रह साल का किशोर बाहर निकल पड़ा। मेरे एक शिक्षक अयादुरै सोलोमन उन उत्सुक छात्रों के लिए आदर्श मार्गदर्शक थे जिनके समक्ष उस समय संभावनाओं और

विकल्पों की अनिश्चितता थी। वह बहुत ही स्नेही, खुले दिमागवाले व्यक्ति थे और छात्रों का उत्साह बढ़ाते रहते थे। इससे छात्र बहुत ही सुखद महसूस करते थे। सोलोमन कहा करते थे कि एक कुशल शिक्षक से कमजोर छात्र जो सीख जाता है, उसकी तुलना में एक होशियार छात्र कमजोर शिक्षक से कहीं ज्यादा सीख सकता है।

रामनाथपुरम् में रहते हुए अयादुरै सोलोमन से मेरे संबंध एक गुरू–शिष्य के नाते से हटकर काफी प्रगाढ़ हो गए थे। उनके साथ रहते हुए मैंने यह जाना कि व्यक्ति खुद अपने जीवन की घटनाओं पर काफी असर डाल सकता है। अयादुरै सोलोमन कहा करते थे–जीवन में सफल होने और नतीजों को हासिल करने के लिए तुम्हें तीन प्रमुख शक्तिशाली ताकतों को समझना चाहिए–इच्छा, आस्था और उम्मीदें। श्री सोलोमन मेरे लिए बहुत ही श्रद्धेय बन गए थे। उन्होंने ही मुझे सिखाया कि मैं जो कुछ भी चाहता हूँ पहले उसके लिए मुझे तीव्र कामना करनी होगी, फिर निश्चित रूप से मैं उसे पा सकूँगा। वे कहा करते थे– निष्ठा एवं विश्वास से तुम अपनी नियति बदल सकते हो।...............

बात उस समय की है जब मैं चौथी फार्म में था। सारी कक्षाएँ स्कूल के अहाते में अलग–अलग झुंडों के रूप में लगा करती थीं। एक दिन मेरे गणित के शिक्षक रामकृष्ण अय्यर एक दूसरी कक्षा को पढ़ा रहे थे। अनजाने में ही मैं उस कक्षा से होकर निकल गया। तुरंत ही एक प्राचीन परंपराओं, तानाशाह

गुरू की तरह रामकृष्ण अय्यर ने मुझे गरदन से पकड़ा और भरी कक्षा के सामने मुझे बेंत लगाए। कई महीनों बाद जब गणित में मेरे पूरे नंबर आए तब रामकृष्ण अय्यर ने स्कूल की सुबह की प्रार्थना में सबके सामने यह घटना सुनाई– “मैं जिसकी बेंत से पिटाई करता हूँ वह एक महान् व्यक्ति बनता है। मेरे शब्द याद रखिए, यह छात्र विद्यालय और अपने शिक्षकों का गौरव बनने जा रहा है।” उनके द्वारा की गई यह प्रशंसा क्या एक भविष्यवाणी थी ?

श्वाटर्ज हाई स्कूल से शिक्षा पूरी करने के बाद मैं सफलता हासिल करने के प्रति आत्मविश्वास से सराबोर छात्र था। मैंने एक क्षण भी सोचे बिना और आगे पढ़ाई करने का फैसला कर लिया। उन दिनों हमें व्यावसायिक शिक्षा की संभावनाओं के बारे में कोई जानकारी तो थी नहीं। उच्च शिक्षा का सीधा सा अर्थ कॉलेज जाना समझा जाता था। सबसे नजदीक कॉलेज तिरूचिरापल्ली में था। उन दिनों इसे तिरूचिनोपोली कहा जाता था और संक्षेप में ‘त्रिची’।

सन् 1950 में इंटरमीडिएट की पढ़ाई के लिए मैंने त्रिची के सेंट जोसेफ कॉलेज में दाखिला ले लिया।..........

मैं सौभाग्यशाली था कि सेंट जोसेफ कॉलेज में मुझे फादर टी.एन. सेक्युरिया जैसे शिक्षक मिले। वे हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे और साथ ही हमारे होस्टल वार्डन भी थे। तीन मंजिले होस्टल में हम करीब सौ छात्र रहते थे। फादर सेक्युरिया रोजाना रात को हाथ में ‘बाइबिल’ लिये हुए हर

लड़के से मिलने आते थे। उनकी ऊर्जा और धैर्य आश्चर्यजनक थी। वे हमेशा दूसरों का खयाल रखनेवाले व्यक्ति थे और हर छात्र की पल–पल की जरूरतों को पूरा करते थे। उनके निर्देश पर ही दीपावली के अवसर पर हमारे होस्टल का इंचार्ज (ब्रदर) और मेस के लोग सभी छात्रों के कमरे में जा–जाकर पवित्र स्नान के लिए उन्हें तिल का तेल देते।

मैं सेंट जोसेफ कॉलेज में चार साल रहा। होस्टल में मेरे साथ कमरे में दो लड़के और थे। एक श्रीरंगम के रूढ़िवादी आयंगर परिवार से था और दूसरा केरल का सीरियाई ईसाई था। हम तीनों हमेशा साथ रहते थे और बहुत ही अच्छा समय कटता था। जब मैं कॉलेज के तीसरे साल में था तब मुझे होस्टल में शाकाहारी मेस का सचिव बना दिया गया। एक रविवार को हमने कॉलेज के प्रमुख फादर कलाथिल को दोपहर के भोज पर आमंत्रित किया। भोज में शामिल व्यंजनों में वे चीजें भी शामिल थीं जो पारंपरिक रूप से हमारे परिवारों में बनाई जाती थीं। इसका नतीजा न सिर्फ अप्रत्याशित रहा बल्कि फादर कलाथिल ने हमारी कोशिशों की भूरि–भूरि प्रशंसा की। हमने उनके साथ बहुत ही आनंद के क्षण गुजारे। उन्होंने हमारे साथ बच्चे की तरह निष्कपट एवं आत्मीयता से बातें कीं। हम सबके लिए यह यादगार घटना थी।

सेंट जोसेफ के मेरे शिक्षक कांची परामाचार्य के सच्चे अनुयायी थे, जो ”देने में ही जीवन का सच्चा आनंद है“ मत के प्रणेता थे। मेरे गणित के शिक्षकों, प्रो.थोथाथ्री आयंगर और प्रो.

सूर्यनारारयण शास्त्री, के कॉलेज परिसर में साथ–साथ टहलने की जीवंत स्मृति मेरे लिए हमेशा प्रेरणा का स्त्रोत बनी रही।

जब मैं सेंट जोसेफ कॉलेज के अंतिम वर्ष में था तभी मुझे अंग्रेजी साहित्य पढ़ने का चस्का लगा। मैंने टॉल्सटॉय, स्कॉट और हार्डी को पढ़ना शुरू किया। उसके बाद दर्शन की ओर झुकाव हुआ तथा उसपर काम भी किया। यह वह समय था जब भौतिकशास्त्र में मेरी गहरी रूचि हो गई थी।

सेंट जोसेफ के मेरे भौतिकी के शिक्षक प्रो. चिन्ना दुरै और प्रो. कृष्णमूर्ति ने परमाणवीय भौतिकी के अध्यायों में मुझे पदार्थों के अर्द्धजीवन काल की अवधारणा और उनके रेडियोएक्टिव क्षय के बारे में ज्ञान कराया। रामेश्वरम् में मेरे विज्ञान के शिक्षक शिव सुब्रह्मण्य अय्यर ने मुझे कभी यह नहीं बताया था कि परमाणु अस्थिर होते हैं और एक निश्चित समय के बाद ये दूसरे परमाणु में परिवर्तित हो जाते हैं। यह सब मैं पहली बार ही जान रहा था। लेकिन जब उन्होंने मुझे हर पल कड़ी परिश्रम करने की बात कही, क्योंकि सभी यौगिक पदार्थों का क्षय अपरिहार्य है, तो मुझे लगा, क्या वे एक ही तथ्य के बारे में बात नहीं कर रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ कि कुछ लोग विज्ञान को इस तरह से क्यों देखते हैं, जो व्यक्ति को ईश्वर से दूर ले जाए। जैसाकि मैंने इसमें देखा कि हृदय के माध्यम से ही हमेशा विज्ञान तक पहुँचा जा सकता है। मेरे लिए विज्ञान हमेशा आध्यात्मिक रूप से समृद्ध होने और आत्मज्ञान का रास्ता रहा।

मैं ब्रह्मांड विज्ञान के बारे में खूब उत्सुकता से किताबें पढ़ा करता हूँ तथा खगोलिय पिंडों के बारे में अधिक–से–अधिक जानने में मुझे बहुत आनंद आता है। कई मित्र मुझसे अंतरिक्ष उड़ानों से संबंधित प्रश्न पूछ लेते हैं और कई बार चर्चा ज्योतिष में चली जाती है। ईमानदारी से मैं वाकई अभी तक इस बात का कारण नहीं समझ पाया हूँ कि क्यों लोग ऐसा मानते हैं कि हमारे सौर परिवार के दूरस्थ ग्रहों का जीवन की रोजमर्रा की घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है। एक कला के रूप में मैं ज्योतिष के खिलाफ नहीं हूँ। लेकिन अगर विज्ञान की आड़ में इसे गलत तरीके से स्वीकार किया जाता है तो मैं इसे नहीं मानता। मुझे नहीं पता कि ग्रहों, नक्षत्रों, तारामंडलों और यहाँ तक कि उपग्रहों के बारे में इन मिथकों ने कैसे जन्म लिया। ब्रह्मांडीय पिंडों की अत्यधिक शुद्ध गति की जटिल गणनाओं में हेर–फेर करके यदि व्यक्तिपरक नतीजे निकाले जाएँ तो ये मुझे अतार्किक लगते हैं। जैसा मैं देखता हूँ कि पृथ्वी ही सबसे शक्तिशाली एवं ऊर्जावान ग्रह है। जॉन मिल्टन ने इसे पैराडाइज लॉस्ट पुस्तक–VII में बड़ी ही खूबसूरती से व्यक्त किया है–

“होने दो सूर्य को

दुनिया का केंद्र

और सितारों की धुरी।

मेरी यह धरती

कितनी गरिमामय

धीमे–धीमे घूमे

तीन अलग धुरियों पर।"

इस ग्रह पर आप जहाँ भी जाते हैं वहाँ गति और जीवन है, वैसे ही निर्जीव वस्तुओं जैसे चट्टानों, धातुओं, लकड़ी, चिकनी मिट्‌टी में भी आंतरिक गतिशीलता विद्यमान है।............

सेंट जोसेफ कॉलेज में जब मैंने बी.एस.सी. में दाखिला लिया था तब मैं उच्च शिक्षा के किसी और विकल्प के बारे में बिलकुल अनभिज्ञ था। न ही भविष्य के अवसरों के बारे में मेरे पास वे सूचनाएँ थीं जो एक विज्ञान के विद्यार्थी के पास होनी चाहिए। बी.एस.सी. के बाद ही मुझे यह महसूस हो गया था कि भौतिकी मेरा विषय नहीं है। मुझे अपना सपना पूरा करने के लिए इंजीनियरिंग में जाना था। इंजीनियरिंग में तो मैं इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी करके भी जा सकता था। दुर्घटना से देर भली–मैंने खुद को ही समझाया और मद्रास इंस्टीट्‌यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी) में दाखिले के लिए चक्कर लगाने शुरू किए। उस समय दक्षिण भारत में तकनीकी शिक्षा के लिए मशहूर यह एक विशिष्ट संस्थान था।

संस्थान के चयनित उम्मीदवारों की सूची में मेरा नाम तो आ गया, लेकिन इस प्रसिद्ध संस्थान में दाखिला काफी खर्चीला था। इसके लिए करीब एक हजार रूपए की जरूरत थी और मेरे पिताजी के पास इतना पैसा कभी हुआ ही नहीं। ऐसे वक्त

में मुझे पढ़ाने के लिए मेरी बहन जोहरा आगे आई और मेरी फीस के लिए उन्होंने अपने हाथों के कड़े तथा हार गिरवी रख दिए। मुझे शिक्षित देखने का उनमें जो दृढ़ संकल्प था और मेरी योग्यताओं एवं क्षमताओं को लेकर उनका जो भरोसा था, वह मुझे गहराई तक छू गया। मैंने अपनी कमाई से ही उनके गिरवी जेवरों को छुड़ाने की ठानी। उस समय मेरे सामने पैसे कमाने का सिर्फ यही रास्ता था कि मैं कड़ी मेहनत करूँ और छात्रवृत्ति हासिल करूँ। मैं पूरी मेहनत एवं लगन से पढ़ाई में जुट गया।

एम.आई.टी. में मुझे सबसे ज्यादा उन दो विमानों ने आकर्षित किया जो वहाँ उड़ान संबंधी मशीनों की विभिन्न कार्यप्रणालियाँ समझाने के लिए प्रदर्शन के तौर पर रखे गए थे। इन विमानों के प्रति मुझे गहरा लगाव हो गया। दूसरे छात्रों के होस्टल लौट जाने के बाद भी मैं उनके पास बहुत देर तक बैठा रहता। एक पक्षी की तरह स्वतंत्र रूप से आकाश में विचरण करने की मनुष्य की इच्छा की मन–ही–मन प्रशंसा करता रहता।

पहला साल पूरा कर लेने के बाद जब मुझे एक विशेष विषय का चुनाव करना था तो मैंने वैमानिकी (एयरोनॉटिकल) इंजीनियरिंग की दिशा चुनी और इसे ही अपना विशेष विषय बनाया। अब मेरे दिमाग में लक्ष्य एकदम स्पष्ट था–मुझे विमान उड़ाना था। अपने भीतर आग्रहिता की कमी के बारे में जानते हुए भी मैंने यह निश्चय कर लिया था। शुरू से ही विनम्र

स्वभाव होने की वजह से मुझमें यह कमी थी कि मैं आग्रही या दावा करनेवाला नहीं था। इसी दौरान मैंने अलग–अलग तरह के लोगों से संवाद कायम करने की कोशिशें कीं। इस दौरान मुझे कई बाधाएँ आई, निराशा हुई और मन में भटकाव आया; लेकिन पिताजी के प्रेरणास्पद वाक्यों ने मुश्किलों के इस दौर में भी मुझे डिगने नहीं दिया। वे कहते थे– वह, जो दूसरों को समझता है, वही सीख लेता है। लेकिन बुद्धिमान 'वह है जो खुद स्वयं को जान लेता है। लेकिन बुद्धिमान वह है जो खुद स्वयं को जान लेता है। बुद्धि के बिना सीखा गया ज्ञान किसी काम का नहीं होता।'

एम. आई.टी. में पढ़ाई के दौरान तीन शिक्षकों ने मेरी अप्रकट सोच को मूर्त रूप दिया। उन तीनों के संयुक्त योगदान से ही उवह नींव पड़ी, जो आगे चलकर मेरा व्यावसायिक कार्यक्षेत्र बनी। वे तीन शिक्षक थे–प्रो.स्पांडर, प्रो. के.ए.वी. परदलाई और प्रो. नरसिंह राव। इनमें प्रत्येक शिक्षक अलग–अलग क्षेत्रों में विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। वे तीनों ही अपनी प्रतिभा एवं अथक उत्साह से छात्रों की बौद्धिक भूख शांत करने के काम में लगन से लगे रहते थे।

प्रो. स्पांडर ने मुझे तकनीकी वैमानिकी गतिकी विषय पढ़ाया। वे ऑस्ट्रिया के थे और वैमानिकी इंजीनियरिंग का उनको खासा अनुभव था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वह नाजियों द्वारा बंदी बना लिये गए थे और उन्हें एक नजरबंद शिविर में कैद रखा गया था। स्वाभाविक था कि जर्मनों के प्रति

उनमें घृणा भर गई। संयोग से वैमानिकी विभाग के प्रमुख एक जर्मन व्यक्ति–प्रो. वॉल्टर रेपेंथिन थे। उस समय एम.आई.टी के डायरेक्टर डॉ. कुर्त टैंक हुआ करते थे। वे वैमानिकी इंजीनियरिंग के क्षेत्र में एक जानी–मानी हस्ती थे और जर्मनी के एक सीटवाले लड़ाकू विमान फोक वुल्फ (एफ.डब्ल्यू 190) का डिजाइन उन्होंने ही तैयार किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय का यह असाधारण लड़ाकू विमान था। बाद में डॉ. टैंक बेंगलौर स्थित हिंदुस्तान एयरोनॉटिकल लिमिटेड (एच.ए.एल) में चले गए और वहाँ उन्होंने भारत का पहला लड़ाकू विमान एच. एफ–24 मारूत तैयार किया।

इन संकटों एवं नाजियों के कष्टों के बावजूद प्रो. स्पांडर ने अपने व्यक्तित्व को बचाए रखा और उच्च व्यावसायिक मानदंडों को भी बनाए रखा। वे हमेशा शांत रहते थे और ऊर्जावान थे। स्वयं पर उनका पूरा नियंत्रण था। वे नई–से–नई तकनीक के बारे में पूरी जानकारी रखते थे और अपने विद्यार्थियों से भी यही उम्मीद रखते थे। वैमानिकी इंजीनियरिंग को अपना विषय चुनने से पहले मैंने उनसे विचार–विमर्श किया था। उन्होंने मुझसे कहा कि किसीको भविष्य को लेकर कभी भी चिंता नहीं करनी चाहिए; बल्कि इसके बजाय ज्यादा महत्वपूर्ण बात तो यह है कि पढ़ाई के लिए जो भी क्षेत्र चुना है, उस विषय में पूरी मेहनत, उत्साह और धैर्य के साथ पढ़ाई करनी चाहिए। जैसाकि प्रो. स्पांडर देखा करते थे, भारतीयों के साथ संकट शैक्षिक अवसरों की कमी या औद्योगिक बुनियादी ढाँचे का नहीं था, संकट तो अनुशासन और अपने चुनाव को

युक्तिसंगत बनाने के बीच अलग करके देख पाने में नाकाम रहने का था। वैमानिकी ही क्यों, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग क्यों नहीं? मैकेनिकल इंजीनियरिंग क्यों नहीं ? मैं खुद इंजीनियरिंग के सभी नए छात्रों से यह कहना चाहूँगा कि जब भी वे विशेषज्ञता हासिल करने के लिए विषय का चुनाव करें तो उसमें देखने लायक जरूरी बात यह है कि उस विषय में उनकी भीतर से रूचि और अंतःप्रेरणा भी है कि नहीं।

प्रो.के.ए.वी.पनदलाई ने मुझे एयरों–स्ट्रक्चर डिजाइन एंड एनालिसिस विषय पढ़ाया था। वे एक बहुत ही खुशमिजाज, दोस्ताना और उत्साही शिक्षक थे और हर साल अपने अध्यापन के तरीके में एक नयापन लेकर आते थे। ये प्रो. पनदलाई ही थे, जिन्होंने स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग के छिपे हुए तथा गोपनीय पहलुओं को पूरी तरह खोलकर हमारे समक्ष रखा। आज भी मेरा मानना है कि जो भी प्रो. पनदलाई के पास पढ़ा है, वह इस बात से पूरी तरह सहमत होगा कि प्रो. पनदलाई एक महान् बुद्धिजीवी एवं अध्येता थे ; लेकिन उनमें घमंड या हेकड़ी नाम की कोई चीज नहीं थी। उनके छात्र कक्षा में उनसे तमाम बिंदुओं पर असहमति व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र थे।

प्रो.नरसिंह राव एक गणितज्ञ थे और हमें सैद्धांतिक वैमानिकी गतिकी पढ़ाते थे। तरल गतिकी पढ़ाने का उनका तरीका मुझे अब तक याद है। उनकी क्लास में पढ़ने के बाद मैंने गणितीय भौतिकी को दूसरा विषय बनाने का मन बनाया। अकसर मुझसे कहा जाता था कि वैमानिकी डिजाइनों की

समीक्षा के लिए मेरे नेफे में एक शब्द चिकित्सा औजार (सर्जिकल नाइफ) रहता है। अगर प्रो. राव की कृपा नहीं होती और वैमानिकी गतिकी के समीकरणों का हल निकालने के लिए वे मुझे प्रेरित नहीं करते तो मेरे पास यह विलक्षण औजार नहीं होता।

वैमानिकी एक बहुत ही मजेदार एवं रूचिकर विषय है, जिसमें एक उन्मुकता है, आजादी है। आजादी और पलायन, गति और हलचल तथा सरकने एवं प्रवाह के बीच एक बड़ा जो फर्क है, वहीं इस विज्ञान की गोपनीयता है। मेरे शिक्षकों ने मुझे इन सच्चाइयों के रहस्य बताए। वैमानिकी के बारे में शिक्षकों ने मेरी उत्सुकता और बढ़ा दी। उनकी बौद्धिकता के उत्ताप, विचारों की शुद्धता तथा धैर्य ने मुझे तरल गतिकी के गंभीर अध्ययन में काफी मदद पहुँचाई।....................

धीरे–धीरे मेरे मस्तिष्क में ढेर सारी जानकारियाँ जमा हो गई। हवाई जहाजों के नए–नए रूप विभिन्न तरह से सामने आने लगे–द्वितल विमान (बाई प्लेन), एक तनीय विमान (मोनो प्लेन), बिना पिछले हिस्सेवाले विमान (टेललैस प्लेन), डेल्टा विंग प्लेन। इन सबकी महत्ता मेरे लिए बढ़ती जा रही थी। मेरे तीनों शिक्षक, जो अपने–अपने विषय के दिग्गज थे, मेरा इस बारे में ज्ञान और बढ़ाने में मदद करते।

मेरा तीसरा और एम.आई.टी. में अंतिम वर्ष एक संक्रमण वर्ष के रूप में था तथा मेरे आनेवाले जीवन में इसका गहरा असर औद्योगिक प्रयासों की एक नई बयार आई हुई थी। मैंने

ईश्वर में अपने विश्वास की परीक्षा ली और यह जानना चाहा कि क्या यह वैज्ञानिक सोच प्रगति के तरीके में कहीं उचित साबित हो सकती है। इसके बाद जो स्वीकार्य विचार था, वह यह कि सिर्फ वैज्ञानिक विधियाँ ही ज्ञान का एकमात्र सही रास्ता है। मुझे आश्चर्य हुआ, यदि ऐसा है तो क्या पदार्थ ही अंततः वास्तविकता और आध्यात्मिक प्रक्रिया है, न कि पदार्थ की अभिव्यक्ति ? क्या सभी नैतिक मूल्य आपस में एक–दूसरे से जुड़े हैं ?

कोर्स पूरा होने के बाद मुझे नीचे आकर करीब से हमला करनेवाले लड़ाकू विमान का डिजाइन तैयार करने की परियोजना में लगा दिया गया। इस परियोजना में मेरे साथ चार और साथी थे। मैंने वायुगतिकी डिजाइन को तैयार करने और उसकी ड्राइंग की जिम्मेदारी ली थी। जबकि मेरी टीम के साथियों को विमान के प्रणोदन, संरचना, नियंत्रण और उपकरणों के डिजाइन तैयार करने का काम सौंपा गया था। एक दिन मेरे डिजाइन शिक्षक प्रो.श्रीनिवासन ने, जो उस समय एम.आई.टी के निदेशक भी थे, मेरे काम की समीक्षा की और इसे निराशाजनक बताते हुए इसपर अपना असंतोष व्यक्त किया। काम में देर के लिए मैंने उनसे कई बार माफी माँगी और अपनी सफाई दी; लेकिन प्रो.श्रीनिवासन ने एक नहीं सुनी। आखिरकार काम पूरा कर लेने के लिए मैंने उनसे एक महीने का वक्त माँगा। कुछ क्षण के लिए उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले, देखो, नौजवान, आज शुक्रवार है। मैं तुम्हें तीन दिन का वक्त देता हूँ। अगर सोमवार सुबह तक मुझे यह ड्राइंग नहीं

मिली तो तुम्हारी छात्रवृत्ति रोक दी जाएगी। मेरे मुँह से शब्द नहीं निकले। छात्रवृत्ति ही मेरा सब कुछ थी और अगर यह वापस ले ली जाती तो मैं एकदम असहाय हो जाता। मेरे सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं था, सिवाय इसके कि मैं उनके निर्देश के अनुसार अपना काम पूरा कर लेता। उस रात मैंने खाना नहीं खाया और रात भर ड्राइंग बोर्ड पर काम करता रहा। अगली सुबह सिर्फ घंटे भर के लिए समय निकाला, जिसमें तैयार होकर नाश्ता किया। रविवार की सुबह मेरा काम पूरा होने के करीब ही था। तभी अचानक मुझे लगा कि मेरे कमरे में कोई है। प्रो. श्रीनिवासन दूर से खड़े मुझे देख रहे थे। वे सीधे जिमखाना से आ रहे थे और टेनिस के कपड़ों में थे तथा मेरा काम देखने के लिए ही यहाँ रूके थे। मेरा काम देखने के बाद उन्होंने मुझे अपने गले लगा लिया और तारीफ करते हुए मेरी पीठ थपथपाई। उन्होंने कहा, मुझे पता था कि तुम्हारे भीतर तनाव पैदा हो रहा है और काम पूरा करने के लिए मैं जो समय तुम्हें दे रहा हूँ, उसमें वह संभव नहीं होगा। मुझे जरा भी उम्मीद नहीं थी कि इतने भयंकर तनाव में भी तुम अपना काम पूरा कर लोगे।

एम.आई.टी. से जो मेरी सबसे गहरी याद जुड़ी हुई है, वह प्रो. स्पांडर से संबंधित है। विदाई समारोह के दौरान हमें एक सामूहिक फोटो खिंचवाना था। स्नातक पास करनेवाले सभी छात्र तीन पंक्तियों में खड़े थे और सभी प्रोफेसर आगेवाली पंक्ति में बैठे हुए थे। प्रो. स्पांडर खड़े हुए और मुझे देखा। मैं तीसरी पंक्ति में खड़ा हुआ था। ‘यहाँ आओ और

आगे की पंक्ति में मेरे साथ बैठो।' प्रो. स्पांडर ने कहा। उन्होंने दोबारा मुझे आगे आने को कहा, 'तुम मेरे सबसे प्रिय छात्र हो। तुम्हारी कड़ी मेहनत ही भविष्य में तुम्हारे शिक्षकों का नाम रोशन करेगी।' उनकी इस प्रशंसा से मेरे समक्ष एक कठिनाई खड़ हो गई; लेकिन अपने काम के सम्मान की वजह से मैं प्रो. स्पांडर के पास जाक बैठ गया। मुझे विदाई देते वक्त प्रो. स्पांडर ने कहा, 'ईश्वर तुम्हारी उम्मीदें पूरी करे, तुम्हें सहारा दे, तुम्हें रास्ता दिखाए और भविष्य की यात्रा में तुम्हारा पथ–प्रदर्शक बने।'

• • • • •

6. आध्यात्मिक पागलों का मिशन

हरिशंकर परासाई

लेखक परिचयः—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी में 22 अगस्त 1942 को हुआ था। इन्होंने स्नातक तक की पढ़ाई यहीं से पूरी की और फिर एम.ए. करने के लिए नागपुर विश्वविद्यालय गए। 18 वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने वन विभाग में नौकरी करनी शुरू कर दी। इसके साथ ही 1942 में मॉडल हाईस्कूल में अध्यापन का भी कार्य करने लगे थे। कुछ समय बाद नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन कार्य करने लगा गए।

परसाई जी हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने व्यंग्य को हिन्दी की एक विधा का दर्जा दिलाया और उसे मनोरंजन की परम्परागत परिधि से निकालकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। उनकी व्यंग्य रचनायें पाठकों के मन में केवल गुदगुदी ही पैदा नहीं करती, बल्कि उन्हें उन सामाजिक वास्तविकताओं के सामने खड़ा करती हैं जिनसे उनका अलग रह पाना असंभव है। लगातार खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में पिसते मध्यवर्गीय मन की सच्चाइयों को हरिशंकर परसाई ने बहुत ही निकटता से परखा है। इसलिए वे हिन्दी साहित्य जगत में महान व्यंग्यकार के रूप में विख्यात हैं।

हरिशंकर परसाई जी ने अपनी रचना की भाषा शैली को कुछ इस तरह से प्रयोग किया है कि इनकी किसी भी रचना

को पढ़ने वाला व्यक्ति उस स्थिति को भलीभांति महसूस कर सकता है। जैसे कि उस व्यंग्य को लिखने वाला उसके सामने बैठकर उस कहानी को प्रस्तुत कर रहा है। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और शोषण पर करारा व्यंग्य किया है, जो हिन्दी व्यंग्य साहित्य में अनूठा है। वे अपने लेखन को एक सामाजिक कर्म के रूप में परिभाषित करते हैं और उनका समूचा साहित्य वर्तमान से मुठभेद करता हुआ दिखाई देता है।

इनकी मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैंः– 'हँसते हैं रोते हैं', 'भोलाराम का जीव'(कहानी), 'रानी नागफनी की कहानी'(उपन्यास), तिरछी रेखाएँ (संस्मरण), भूत के पाँव पीछे, माटी कहे कुम्हार से, सदाचार का तावीज, विकलांग श्रद्धा का दौर आदि निबन्ध संग्रह है।

विकलांग श्रद्धा का दौर के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया।

शुक्लोत्तर युग के हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ व्यंग्यकार श्री हरिशंकर परसाई जी का निधन 10 अगस्त 1995 को हुआ।

....

भारत के सामने अब एक बड़ा सवाल है–अमेरिका को अब क्या भेजे? कामशास्त्र वे पढ़ चुके। संत देख चुके। साधु

देख चुके। गाँजा और चरस वहाँ के लड़के पी चुके। भारतीय कोबरा देख लिया। गिर का सिंह देख लिया। जनपथ पर 'प्राचीन' मूर्तियाँ भी खरीद लीं। अध्यात्म का आयाता भी अमेरिका काफी कर चुका और बदले में गेहूँ भी दे रहा है। हरे कृष्ण, हरे राम भी बहुत हो गया।

महेश योगी, बाल योगेश्वर , बाल भोगेश्वर आदि के बाद अब क्या हो ? मैं देश–भक्त आदमी हूँ। मगर मैं अमेरिकी पीढ़ी को भी जानता हूँ। मैं जानता हूँ, वह बोर समाज का आदमी हैं–याने बड़ा बोर आदमी। शेयर अपने आप डॉलर दे जाते हैं। घर में टेलीविजन है, दारू की बोतलें हैं। शाम को वह दस–पंद्रह आदमियों से हाउ डु यू डू कर लेता है। पर इससे बोरियत नहीं मिटती। हनोई पर कितनी भी बम–वर्षा अमेरिका करे, उत्तेजना नहीं होती। कुछ चाहिए उसे। उसे भारत से ही चाहिए।

मुझे चिंता जितनी बड़ी अमेरिका की है उतनी ही भारतीय भाइयों की। इन्हें भी कुछ चाहिए।

अब हम भारतीय भाई वहाँ डॉलर और यहाँ रुपयों के लिए क्या ले जाएँ? रविशंकर से वे बोर हो चुके। योगी, संत वगैरह भी काफी हो चुके। अब उन्हें कुछ नया चाहिए–बोरियत खत्म करने और उत्तेजना के लिए। डॉलर देने को वे तैयार हैं।

मेरा विनम्र सुझाव है कि इस बार हम भारत से 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' ले जाएँ। ऐसा मिशन आज तक नहीं गया। यह नायाब चीज होगी—भारत से 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' याने आध्यात्मिक पागलों का मिशन।

मैं जानता हूँ। आम अमेरिकी कहेगा—वी हेव सीन वन। हिज नेम इज कृष्ण मेनन। (हमने एक पागल देखा है। उसका नाम कृष्ण मेनन है।) तब हमारे एजेंट कहेंगे—वह 'डिवाइन' (आध्यात्मिक) नहीं था। और पागल भी नहीं था। इस वक्त मेरे आध्यात्मिक पागल भारत से आ रहे हैं।

मैं जानता हूँ आध्यात्मिक मिशनें 'स्मगलिंग' करती रहती हैं। पर भारत सरकार और आम भारतीयों को यह नहीं मालूम कि लोगों को 'स्वर्ग'में भी स्मगल किया जाता है।

यह अध्यात्म के डिपार्टमेंट से होता है। जिस महान देश भारत में गुजरात के एक गाँव में एक आदमी ने पवित्र जल बाँटकर गाँव उजाड़ दिया, वह क्या अमेरिकी को स्वर्ग में 'स्मगल' नहीं कर सकता ?

तस्करी सामान की भी होती है—और आध्यात्मिक तस्करी भी होती है। कोई आदमी दाढ़ी बढ़ाकर एक चेले को लेकर अमेरिका जाए और कहे, 'मेरी उम्र एक हजार साल है। मैं हजार सालों से हिमालय में तपस्या कर रहा था। ईश्वर से मेरी तीन बार बातचीत हो चुकी है।' विश्वासी पर साथ ही शंकालु

अमेरिकी चेले से पूछेगा—क्या तुमरे गुरु सच बोलते हैं? क्या इनकी उम्र सचमुच हजार साल है ? तब चेला कहेगा, 'मैं निश्चित नहीं कह सकता, क्योंकि मैं तो इनके साथ सिर्फ पाँच सौ सालों से हूँ।'

याने चेले पाँच सौ साल के वैसे ही हो गए और अपनी अलग कंपनी खोल सकते हैं। तो मैं भी सोचता हूँ कि सब भारतीय माल तो अमेरिका जा चुका—कामशास्त्र, अध्यात्म, योगी, साधु वगैरह।

अब एक ही चीज हम अमेरिका भेज सकते हैं—वह है भारतीय आध्यात्मिक पागल—इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिका इसलिए मेरा सुझाव है कि 'इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' की स्थापना जल्दी ही होनी चाहिए। यों मेरे से बड़े—बड़े लोग इस देश में हैं। पर मैं भी भारत की सेवा के लिए और बड़े अमेरिकी भाई की बोरियत कम करने के लिए कुछ सेवा करना चाहता हूँ। यों मैं जानता हूँ कि हजारों सालों से 'हरे राम हरे कृष्ण' का जप करने के बाद भी शक्कर सहकारी दुकान से न मिलकर ब्लैक से मिलती है— तो कुछ दिन इन अमरिकियों को राम—कृष्ण का भजन करने से क्या मिल जाएगा ? फिर भी संपन्न और पतनशील समाज के आदमी के अपने शांति और राहत के तरीके होते हैं—और अगर वे भारत से मिलते हैं, तो भारत का गौरव ही बढ़ता है। यों बरट्रेंड रसेल ने कहा है—अमेरिकी समाज वह समाज है जो बर्बरता से एकदम पतन पर पहुँच गया है—वह सभ्यता की स्टेज से गजरा ही नहीं।

एक स्टेप गोल कर गया। मुझे रसेल से भी क्या मतलब? मैं तो नया अंतरराष्ट्रीय धंधा चालू करना चाहता हूँ– 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन'। दुनिया के पगले शुद्ध पगले होते हैं–भारत के पगले आध्यात्मिक होते हैं।

मैं 'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' बनाना चाहता हूँ। इसके सदस्य वही लोग हो सकते हैं, जो पागलखाने में न रहे हों। हमें पागलखाने के बाहर के पागल चाहिए याने वे जो सही पागल का अभिनय कर सकें। योगी का अभिनय करना आसान है। ईश्वर का अभिनय करना भी आसान है। मगर पागल का अभिनय करना बडा ही कठिन है। मैं योग्य लोबों की तलाश में हूँ। दो–एक प्रोफेसर मित्र मेरी नजर में हैं जिनसे मैं मिशन में शामिल होने की अपील कर रहा हूँ।

मिशन बनेगा और जरूर बनेगा। अमेरिका हमारी एजेंसी प्रचार करेगी–सी रीयल इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स (सच्चे भारतीय आध्यात्मिक पागलों को देखा।) हम लोगों के न्यूयार्क हवाई अड्डे पर उतरने की खबर अखबारों में छपेगी। टेलीविजन तैयार रहेगा।

मिसेज राबर्ट, मिसेज सिंपसन से पूछेगी, 'तुमने क्या सच्चा आध्यात्मिक भारतीय पागल देखा है ?' मिसेज सिंपसन कहेगी, 'नो, इज देअर वन इन दिस कंट्री, अंडर गाड?' मिसेज राबर्ट कहेगी, 'हाँ, कल ही भारतीय आध्यात्मिक पागलों का एक मिशन न्यूयार्क आ रहा है। चलो हम लोग देखेंगेः इट विल बी

ए रीअल स्पिरिचुअल एक्सपीरियंस। (वह एक विरल आध्यात्मिक अनुभव होगा।)'

न्यूयार्क हवाई अड्डे पर हमारे भारतीय पागल आध्यात्मिक मिशन के दर्शन के लिए हजारों स्त्री–पुरुष होंगे–उन्हें जीवन की रोज ही बोरियत से राहत मिलेगी। हमारा स्वागत होगा। मालाएँ पहनाई जाएँगी। हमारे ठहराने का बढ़िया इंतजाम होगा।

और तब हम लोग पागल अध्यात्म का प्रोग्राम देंगे। हर गैरपागल पहले से शिक्षित होगा कि वह सच्चे पागल की तरह कैसे नाटक करे। प्रवेश–फीस 50 डॉलर होगी और हजारों अमेरिकी हजारों डॉलर खर्च करके 'इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स' के दर्शन करने आएँगे।

हमारा धंधा खूब चलेगा। मैं मिशन का अध्यक्ष होने के नाते भाषण दूँगा, वी आर रीअल इंडियन डिवाइन ल्यूनटिक्स। ऋषीज एंड मुनीज थाउज़ेंड ईअर्स एगो सेड दैट दि वे टु रीअल इंटरनल पीए एंड साल्वेजन लाइज थ्रू ल्यूनेसी। (हम लोग भारतीय आध्यात्मिक पागल हैं। हमारे ऋषि–मुनियों ने हजारों साल पहले कहा था कि आंतरिक शांति और मुक्ति पागलपन से आती है।)

इसके बाद मेरे साथी तरह–तरह के पागलपन के करतब करेंगे और डॉलर बरसेंगे।

जिन लोगों को इस मिशन में शामिल होना है, वे मुझसे संपर्क करें। शर्त यह है कि वे वास्तविक पागल नहीं होने चाहिए। वास्तविक पागलों को इस मिशन में शामिल नहीं किया जाएगा—जैसे सच्चे साधुओं की जमात में शामिल नहीं किया जाता।

अमेरिका से लौटने पर, दिल्ली में रामलीला ग्राउंड या लाल किले के मैदान में हमारा शानदार करूँगा कि प्रधानमंत्री इसका उद्‌घाटन करें।

वे समय न निकाल सकीं तो कई राजनैतिक वनवास में तपस्या करते नेता हमें मिल जाएँगे। दिल्ली के 'स्मगल' हमारा पूरा साथ देंगे। कस्टम और एनफोर्स महकमे से भी हमारी बातचीत चल रही है। आशा है वे भी अध्यात्म में सहयोग देंगे।

स्वागत समारोह में कहा जाएगा, 'यह भारतीय अध्यात्म की एक और विजय है, जब हमारे आध्यात्मिक पगले विश्व को शांति और मोक्ष का संदेश देकर आ रहे हैं। आशा है आध्यात्मिक पागलपन की यह परंपरा देश में हमेशा विकसित होती रहेगी।'

'डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन' को जरूर अमेरिका जाना चाहिए। जब हमारे और उनके राजनैतिक संबंध सुधर रहे हैं तो पागलों का मिशन जाना बहुत जरूरी है।

• • • • •

7. योग्यता और व्यवसाय का चुनाव

माधवराव सप्रे

लेखक परिचयः—तेजस्वी और जुसारू पत्रकार माधवराव सप्रे का जन्म मध्यप्रदेश के सागर जिले के पथरिया गाँव में सन् 1871 को हुआ था। सप्रे जी की शिक्षा क्रमशः बिलासपुर और जबलपुर में संपन्न हुई। हिन्दी भाषा के परिष्कार के साथ—साथ पाठकों में साहित्यिक संस्कार पैदा करने का संकल्प लेकर इन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखा। छतीसगढ़ मित्र नामक मासिक पत्र से इन्होंने पत्रकारिता की शुरूआत की। इसके बाद उन्होंने नागपुर के देश सेवक प्रेस में नौकरी करते हुए हिन्दी ग्रन्थ माला के प्रकाशन की योजना बनाई। इसके माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में जनसाधारण के अभियान की भूमिका तैयार की। इनकी प्रेरणा व सहयोग से माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पादन में कर्मवीर पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ।

पत्रकारिता के साथ—साथ सप्रे जी ने स्वदेशी आन्दोलन और बायकॉट, जीवन संग्राम में विजय प्राप्ति के कुछ उपाय; हिन्दी दासबोध और भारतीय युद्ध जैसे ग्रंथों की रचना की। इन्होंने अदम्य राष्ट्रीय चेतना, गौरवशाली सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा के बीच जीवन्त और प्रखट पत्रकारिता का इतिहास रचा। राष्ट्रभाषा और देश के प्रति समर्पण का भाव इनके मन में अधिक गहरा था।

....

प्रत्येक मनुष्य के लिए किसी–न–किसी व्यवसाय, रोजगार, धन्धे अथवा पेशे की आवश्यकता है और अपने लिए बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवसाय चुनने में ही मनुष्य जीवन का सफल होना अवलम्बित है। ऐसे बहुत ही थोड़े–हजारों में एक–मनुष्य होंगे जिन्हें जीवन–निर्वाह के लिए कुछ उद्योग नहीं करना पड़ता; अर्थात् जिनके पास आवश्यकता से बहुत ही अधिक सम्पत्ति होती है। परन्तु ऐसे मनुष्यों को अपने लिए कुछ–न–कुछ कार्य चुनने की आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि ऐसे मनुष्यों को उदर–पूर्ति के लिए भले ही कष्ट न उठाना पड़े, परन्तु अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए तथा उसे आलस्य से बचाने के लिए, इच्छा न होने पर भी कुछ काम करना ही पड़ता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य–जीवन काम करने के लिए ही बनाया गया है और धनवान् तथा धनहीन कोई भी मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

यद्यपि इस बात की सत्यता निर्विवाद सिद्ध है कि प्रत्येक मनुष्य को कुछ–न–कुछ व्यवसाय का कार्य करना ही पड़ेगा, तथापि बहुत–से युवकों को इस बात से डर और घृणा होती है। वे अपने माता–पिता का पिंड नहीं छोड़ना चाहते और रोटी के प्रश्न को स्वयं हल करना बेइज्जती समझते हैं। परन्तु उन्हें भी कभी–न–कभी, जल्दी अथवा देरी से, कुछ कार्यारम्भ करना ही पड़ता है। इसलिए प्रत्येक युवक का, जो संसार में प्रवेश करके विजय कामना रखता हो, यह कर्तव्य है कि वह शीघ्र ही

इस बात का निश्चय कर ले कि वह अपनी सारी शक्तियों को किस काम में लगाएगा। अनिश्चित अवस्था में रहकर विलम्ब करने और व्यर्थ समय खोने से कुछ लाभ न होगा।

बहुत–से मनुष्य सुख का अर्थ नहीं समझते। वे कार्य के अभाव अर्थात् आलस्य के साथ समय बिताने को सुख का साधन समझते हैं। यह बड़ी भारी भूल है। कहा जाता है कि उद्योगरहित और कार्यहीन मनुष्यों का मन शैतान का निवास–स्थान होता है। भारतवर्ष के एक बड़े अधिकारी को यह आज्ञा मिली कि “अब तुम्हारे नौकरी के दिन पूरे हो गये। तुमने ईमानदारी से काम किया, इसके उपलक्ष्य में तुम्हें पेंशन मिला करेगी।” जब उसे यह आज्ञा मिली त बवह बहुत ही खुश हुआ। खुशी इस बात की थी कि उसे अब काम नहीं करना पड़ेगा और मजे में दिन काटने का अवसर मिला करेगा। उसने खुशी के आवेश में अपने एक मित्र को यह पत्र लिख भेजा, “अब मैंने दिन–भर के झंझटों से छुट्टी पाई। दिन–रात काम करने से जी ऊब गया था। अब मुझे दस गुनी तनख्वाह मिले तो भी मैं काम नहीं करूँगा।” दो–चार–आठ दिन बीत जाने पर जब वह बैठे–बैठे तंग आने लगा और जब उसने देखा कि काम किए बिना आलस्यपूर्ण जीवन बड़ा ही दुःखदायी होता है, तब उसने फिर अपने उस मित्र को शोक के साथ लिखा, “भाई! मैं समझता था कि काम न करने ही में आनन्द है, परन्तु बात बिलकुल उल्टी है। अब मुझे साफ–साफ मालूम हो रहा है कि मेरा पूर्व जीवन बहुत ही उत्तम और सुखपूर्ण था। जितना

ही अधिक काम करना पड़ता था, उतना ही अधिक सुख मिलता है।"

सारांश यह है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना मनुष्य के देह–धर्म के विरूद्ध है। मनुष्य का मन पनचक्की के समान है। जब उसमें गेहूँ डालते जाओगे तब वह गेहूँ को पीसकर आटा बना देगी। परन्तु जब उसमें गेहूँ न डालोगे तब वह स्वयं अपने–आपको पीसकर क्षीण बना डालेगी।

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि काम करना अथवा आलस्यपूर्ण जीवन बिता देना देह–धर्म के विरूद्ध है, तब हमारा यही कर्तव्य है कि हम कुछ–न–कुछ अच्छा व्यवसाय अपने लिए पसन्द करें। यह व्यवसाय हमारे मन, इच्छा, कार्यशक्ति और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिए। स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल व्यवसाय करने में सफलता कभी हो नहीं सकती। मनुष्य–जीवन के असफल होने के दो मुख्य कारण हैं–पहला यह कि वह कभी–कभी अपनी स्वाभाविक कार्य–शक्ति के विरूद्ध व्यवसाय में लग जाता है। दूसरा कारण यह है कि मनुष्य व्यवसाय–कुशल हुए बिना ही अपने कार्यों को शुरू कर देता है, परन्तु जब तक कार्यकुशलता और कामचलाऊ अनुभव न हो जाए तब तक सहसा कोई काम शुरू न करना चाहिए। यह सच है कि अनुभव और कुशलता जल्द नहीं आती, परन्तु इन्हें दृष्टि के बाहर जाने नहीं देना चाहिए।

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवन–संग्राम में मनुष्य अमुक दो कारणों से अकृतकार्य होता है, परन्तु हमारे भारतवर्ष

में एक और तीसरा कारण देखा जाता है। इस देश के पढ़े–लिखे शिक्षित लोग मानसिक और मौखिक कार्य करना अधिक पसन्द करते हैं। लोगों में शारीरिक व्यवसायों से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गई है। ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। एक मनुष्य आठ रुपये माहवार पर म्युनिसिपल नाके का मुंशी बनकर कान में कलम दबा रखने में अपने जीवन की सार्थकता समझता है, परन्तु अन्य शारीरिक कार्य करके अधिक द्रव्य पैदा करने में उसे लज्जा मालूम होती है। भारतवर्ष में बाबू साहिबी की बीमारी दिनोंदिन बढ़ रही है और शोक के साथ कहना पड़ता है कि यदि किसी ने इस मर्ज की दवा शीघ्र न निकाली तो यह बीमारी असाध्य हो जाएगी। स्मरण रहे कि शारीरिक श्रम करने से और अपनी कर्मेन्द्रियों को किसी उपयोगी कार्य में लगा देने से ही शिक्षित समाज अपने देश के लिए आदर्श हो सकता है। विद्यार्थियों के लिए उचित है कि वे इस बात पर ध्यान दें और शारीरिक श्रम से घृणा न करें।

जब हम अपनी रूचि और प्रवृत्ति के अनुसार कोई व्यवसाय चुन लें तब फिर हमें उसमें हजारों बाधाओं के होने पर भी लगे रहना चाहिए। बहुधा युवावस्था में कुछ कष्ट, उदासीनता अथवा अकृतकार्यता होने से युवकगण हताश होकर अपने इच्छित व्यवसाय को यह समझकर छोड़ देते हैं कि कदाचित् वे किसी दूसरे व्यवसाय में लग जाने से अधिक सफलीभूत होंगे, परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। हमें सर्वदा यही उचित है कि हम जिस धन्धे को अपने लिए एक बार चुन लें, फिर उसे कभी न छोड़ें, उसी में दृढ़तापूर्वक लगे रहें।

जीवन–संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल व्यवसाय चुनने की जितनी जरूरत है, उससे बढ़कर उसमें दृढ़तापूर्वक लगे रहने की भी है। कठिनाइयों के उपस्थित होने पर यह विचार करना मूर्खता है कि हम किसी दूसरे व्यवसाय में अधिक सफल हुए होते। जब अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे धन्धों में लगने के लिए जी ललचाता है तब उस दूसरे धन्धे के केवल गुण और लाभ ही दृष्टिगत हुआ करते हैं और अपने धन्धे के केवल दोष और हानि, पर ऐसा होना सम्भव नहीं है। हम जिस गुलाब को देखेंगे, उसी में काँटे मिल सकते हैं। इसलिए अपने एक बार के दृढ़ निश्चित व्यवसाय को बिना समझे–बूझे कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

हमें किसी व्यवसाय के चुनने अथवा छोड़ने में चंचलता अथवा जल्दी नहीं करनी चाहिए। कभी–कभी जब मनुष्य अपने व्यवसाय में हजार प्रयत्न करने पर भी सफल नहीं होता तब उसे व्यवसाय बदलकर दूसरा चुनने की आवश्यकता अवश्य होती है। परन्तु इससे यह भी सिद्ध होता है कि उसने व्यवसाय को चुनने में बड़ी गलती की। ऐसी गलतियाँ कई कारणों से –बुरी संगति, अचानक घटना, माता–पिता की बुद्धिहीनता अथवा अधूरी शिक्षा के कारण बहुधा हुआ करती है। परन्तु युवावस्था में मन बहुत चंचल रहता है। किसी काम को खूब सोच–समझकर करना चाहिए। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि अनेक युवक उस कार्य को करते हैं जिसमें वे कभी सफल नहीं हो सकते और कुछ युवक भ्रमवश उस व्यवसाय को छोड़ बैठते हैं जिसमें थोड़े ही अधिक परिश्रम से वे सफलीभूत हो गए

होते। ध्यान रखने की बात है कि जो व्यवसाय किसी भी दृष्टि से जितना ही अधिक अच्छा होगा, उसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उतना ही अधिक समय और परिश्रम भी लगेगा। हाँ, जिस राह से हम जा रहे हैं, उस राह में यदि सिंह मिल जाए तो हमारा यह सोचना बिलकुल स्वाभाविक होगा कि उस रास्ते के सिवा संसार में अन्य किसी रास्ते में सिंह आ ही नहीं सकता, परन्तु बिना परिश्रम के कुछ भी नहीं मिल सकता। इसलिए बाधाओं का सामना करते हुए अपने एक बार के चुने हुए व्यवसाय में दृढ़तापूर्वक लगे रहना श्रेयस्कर है।

बहुत–से युवक अपनी योग्यता की डींग हाँके बिना सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहा करते हैं कि यदि हम उस व्यवसाय में न होते तो बहुत ही यशस्वी होते। उनका ईश्वर के सामने यही रोना रहता है कि उसने हमें अपनी अपूर्व योग्यता को प्रकाशित करने का अवसर ही न दिया। अपने साथियों के समक्ष अपनी योग्यता के विषय में व्याख्यान देकर ऐसे युवक कहा करते हैं कि हमें अपनी योग्यता को बर्बाद करना पड़ रहा है, ग्रहदशा अच्छी नहीं है, साधन और संयोग प्रतिकूल हैं, इत्यादि। परन्तु यह युवकों की बड़ी भारी भूल है। इस तरह के प्रलापों के कारण दुनिया उन्हें आत्म–प्रशंसा समझकर उनका तिरस्कार करेगी; क्योंकि दुनिया उन्हें आत्म–प्रशंसक समझकर उनका तिरस्कार करेगी; क्योंकि दुनिया की तो आज तक यही समझ है कि जिसमें थोड़ी–बहुत आश्चर्यजनक योग्यता विद्यमान है, वह मनुष्य उसे किसी–न–किसी तरह से संसार को अवश्य ही दिखा देगा। इसलिए अपने व्यवसाय की तुच्छता की

शिकायत करते रहने के बदले उसे उच्च और कुलीन बनाने के प्रयत्न में मनोयोगपूर्वक लगे रहने से अधिक लाभ और ख्याति की सम्भावना है।इस व्यवसाय को तुम अपने किसी पाप का प्रायश्चित मत समझो, केवल कर्तव्य समझकर उसके सम्पादन में दत्तचित्त हो जाओ, फिर सफलता दूर नहीं रहेगी।

• • • • •

8. गप–शप

–नामवर सिंह

लेखक परिचयः– नामवर सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश में वाराणसी जनपद में 1927 ई. को हुआ था। हिन्दी विश्वविद्यालय से एम.ए., पी.एच.डी. करने के बाद कुछ वर्षों तक अध्यापन किया। जोधपुर विश्वविद्यालय तथा जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में हिन्दी के आचार्य के पद पर आसिन रहे। अनेक वर्षों से आलोचना पत्रिका का सम्पादन किया। नामवर सिंह प्रगतिशील आलोचक के रूप में प्रसिद्ध है। इनकी मृत्यु 19 फरवरी 2019, नई दिल्ली में हुई।

इन्होंने अधिकतर आलोचना, साक्षात्कार इत्यादि विधाओं में सृजन किया है। कविता के नये प्रतिमान के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा गया था। 1991 से राजा राजमोहन राय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष रहे। 1959 में वे सक्रिय राजनीति में उतरे, लोकसभा चुनाव लड़ा, हालाँकि चुनाव में उन्हें हार का सामना करना पड़ा था।

कहानीः नयी कहानी, छायावाद, इतिहास और आलोचना, कविता के नये प्रतिमान, दूसरी परंपरा की खोज, वाद विवाद संवाद, आपकी प्रमुख रचनाएँ है। हिन्दी की दो पत्रिकाओं जनयुग और आलोचना का संपादन भी किया। इनके आलोचनात्मक रचनाएँ हैः– बक़लम खुद, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृथ्वीराज रासों की भाषा, छायावाद, इतिहास और आलोचना, दूसरी परंपरा की खोज, 'कहना न होगा' इनकी साक्षात्कार रचना है। नामवर सिंह को साहित्य अकादमी पुरस्कार, शलाका सम्मान

हिन्दी अकादमी, साहित्य भूषण सम्मान, महावीर प्रसाद सम्मान तथा शब्दसाधक शिखर सम्मान प्राप्त हुए है।

....

डायरी तो मैं लिखता नहीं और न हिसाब–किताब रखने की आदत ही है, लेकिन आज सोते समय जब पूरे दिन की उपलब्धियों पर विचार करने लगा तो शून्य भी हाथ न आया– वह भी ऊपर ही रहा। बड़ी झल्लाहट हो रही है। सारा दिन बेकार गया। कुछ तो इधर–उधर घूमने में और कुछ इधर–उधर की गप–शप में। क्या लाभ हुआ इन व्यर्थ की बातों से ? गोष्ठी के साथ भी खूब हैं: न कोई निश्चित विषय और न किसी बात पर अच्छी तरह जम के विचार! जैसे केले के पात–पात में पात वैसे बात–बात में बात! एक है 'व' – गप्पें हाँकने में आला। सभी बातें इस तरह कहता है जैसे वह उन सबका नायक हो। प्रेम की कहानियाँ, रोमांस की घटनाएँ, शिकार के दृश्य, सब कुछ इस तरह बयान करता है जैसे वह डान 'क्विक्जोट' हो। कहने से तो ऐसा मालूम होता है जैसे संसार की सारी लड़कियाँ उसी पर मरती हैं। वाहियात! दस फीसदी सच्चाई पर नब्बे फीसदी झूठ का मुनाफा रखकर बातें करता है। दूसरा है 'प'– उसकी दूसरी सनक। गोया दुनिया में कोई ऐसा नहीं है जिसे वह न जानता हो! बड़े–बड़े डाक्टरों से उसका परिचय, पुलिस के अधिकारियों से उसका सम्बन्ध, मन्त्रियों और नेताओं तक उसकी पहुँच। गरज कि वह साधारण लोगों पर यदि कभी कृपा करने आता है तो केवल हमीं लोगों पर। तीसरे साहब हैं 'म' –जब मिलिए वही अध्यापकी जीवन की बातें रटेंगे। फलाँ को मैंने ऐसा जवाब दिया, फलाँ को ऐसे

लथेड़ा आज क्लास में ऐसा पढ़ाया। मतलब दुनिया–भर उनके लिए पाठशाला है और सभी लोग उनके विद्यार्थी।

क्यों किसी का समय मैं लूँ, लेकिन इसी तरह की बातें हुईं। लौटा तो मन इतना भारी था कि कभी ऐसी गोष्ठी में भाग न लेने की प्रतीज्ञा की। लेकिन इस समय जब ठंडे दिल से सोच रहा हूँ तो लगता है कि यह सब बिल्कुल बेकार ही नहीं था। बेकार बातों से ही तो किसी का चरित्र खुलता है। इतने लोगों के बारे में मैंने जो राय बनायी, वह क्या किसी संतुलित बात पर विवाद करने से हो सकती थी? आदमी का सच्चा रूप तो उसकी बेकार की ही बातों में खुलता है। नियमित और विवेकपूर्ण बातों से तो उसका बनावटी या ऊपरी रूप दिखायी पड़ता है। भाषण से उसकी बुद्धि और वक्तृता–शक्ति का पता चलता है। असली आदमी कहीं भीतर ढका रहता है। हृदय का धड़कता हुआ पंछी किसी भीतरी पिंजरे में होता है।

काम की बातों से काम का पता चलता है, आदमी का नहीं। आदमी का पता तो बेकाम की बातों से चलता है। आदमी की असली और छिपी मनोवृत्तियाँ तो तभी खुलती हैं। बात तो बात, निरर्थक शब्द भी बेकार नहीं होते। वैयाकरण केवल सार्थक शब्दों के बच्चे खिलाते रहें, लेकिन क्या आदमी निरर्थक शब्दो का प्रयोग छोड़ सकता है? सुनते हैं, शब्द और अर्थ विवाहित ही पैदा हुए हैं और आजीवन दो रहते हुए भी एक रहने का व्रत लेते हैं। परन्तु उनमें भी कुछ तलाक देने वाले होते ही हैं और उनका असली भेद उसी दिन खुलता है, जब दोनों एक–दूसरे को तलाक देकर अलग हो जाते हैं।

सार्थक शब्द तो सामाजिक परम्परा के नपे–तुले ढाँचे हैं, उनमें तो जो बातें आती हैं वह टाइप बनकर। निरर्थक शब्दों से ही उसकी मौलिकता और वास्तविकता का पता लगता है। क्या कभी आपने अतीव विस्मृतावस्था में आत्मविभोर दो प्रेमियों की बातें सुनी है? 'सुनी हैं' मैं इसलिए पूछ रहा हूँ 'की हैं' की बात तो आप शायद तटस्थ भाव से न परख पाएँ। हो सकता है छिपाएँ भी। क्या उस भावावेश में कोई वाक्य या शब्द ठीक–ठिकाने से सार्थक निकलता हैं ? उस समय हृदय बोलता है और हृदय की भाषा प्रायः निरर्थक होती है,सार्थक भाषा तो बुद्धि की होती है। ध्यान कहीं और होता है। अथवा नहीं होता है। इन्द्रियाँ सुप्त, शरीर जड़, शब्द मशीन से निकलते हैं। शब्द इसलिए निकलते हैं कि उन्हें पहले से मनुष्य बोलता आ रहा है। प्रश्न कुछ होता है, उत्तर कुछ होता है, उत्तर का उत्तर दिया जाता है और प्रश्न का प्रश्न। जैसे शब्दों की अपार वस्त्रराशि में से कोई कुछ पहन ले, कोई कुछ–कमीज की जगह पायजामा और पायजामे की जगह कुर्ता।

काम के लिए पत्र तो सब लिखते हैं। दफ़्तरी चिटिठयाँ रोज लिखी जा रही हैं; लेकिन काम का पत्र लिखने से शायद ही किसी को तृप्त होती है। कुछ पत्र आदमी यों ही लिखना चाहता है अथवा लिख जाता है, जिसका न तो कोई उद्देश्य होता है, न अभिप्राय और प्रयोजन। ऐसे निष्प्रयोजन पत्र का कोई उत्तर भी नहीं हो सकता, लेकिन देखता हूँ तो ऐसे प्रश्न पत्रों के उत्तर की प्रतीक्षा बड़ी बेकरारी से की जाती है। (और उसका उत्तर भी सबसे लम्बा दिया जाता है)। आठ–आठ हजार, दस–दस हजार शब्दों में। ऐसे ही बेकार पत्रों से

आदमी, आदमी उतरता है, आदमी खिलता है, आदमी खुलता है।

भूमिति की सार्थक रेखाएँ बहुत खींची जाती हैं। ओवरसियर और इंजीनियर लोग कोई मकान बनाने से पहले उसका रेखागणित बना लेते हैं। यह है सोद्देश्य और सप्रयोजन। लेकिन क्या वे सदैव ऐसी ही रेखाएँ खींचते हैं? जब कभी मन उदास हो, दिल भरा हो, दिमाग खाली हो, मन कहीं हो, तन कहीं हो, ऐसी दशा में भी क्या वह सार्थक ही रेखाएँ खींचता है? क्या करे मन जब नहीं तन? क्या करे तन कब नहीं मन? ऐसी दशा में वह कुछ अर्थहीन रेखाएँ खींचता रहता है—कागद हुआ तो कागद पर, न हुआ तो ज़मीन पर—

भाव भरा उर, शब्द न आते,
पहुँच न इन तक आँसू पाते।
आओ, तृण से शुष्क धरा पर अर्थ—रहित रेखाएँ खींचे।

लेकिन, कोई हृदयहीन ही इन रेखाओं को अर्थ—रहित कहेगा। सार्थक रेखा या लिपि है, जो इन भावों को इतनी अधिक तीव्रता और गहराई के साथ व्यक्त कर सकने की सामर्थ्य रखती है? किसी की बेकार खींची हुई रेखाओं से उसकी तत्कालीन मनःस्थिति का पता अच्छी तरह चल सकता है। सार्थक रेखाएँ या तो त्रिभुज बनाएँगी या किसी मकान अथवा पुल का मॉडल, आदमी नहीं।

इसी तरह पाठ्यक्रम की पुस्तकें देखकर किसी विद्यार्थी का वास्तविक रूप नहीं जाना जा सकता। उसे वह रखता है, क्योंकि उसे रखना पड़ता है। इससे अधिक से अधिक यही पता चल सकता है कि उसका ध्यान पाठ्य—पुस्तकों के संग्रह की

ओर कितना है। परन्तु उसका भीतरी रूप तो उन पुस्तकों के संग्रह से मालूम होता है कि जिन्हें पाठ्यक्रम की दृष्टि से बेकार कहा जाएगा। नियमों की सीमा से चलते हुए आदमी नहीं पहचाना जाता, नियमों को तोड़ने अथवा उनकी सीमा समाप्त होने पर पहचाना जाता है। इसीलिए विद्यार्थी–जीवन में सभी विद्यार्थी आदमी के रूप में बहुत कुछ एक–से लगते हैं, परन्तु उन ढाँचो से बाहर निकलते ही अलग हो जाते हैं। कौन कहता है कि बेकार की पुस्तकें बेकार हैं? वही तो आदमी के सच्चे रूप की पुस्तकें हैं।

यही हालत है बेकार खर्च की। अगर कोई विद्यार्थी कालेज की फ़ीस़ जमा कर आता है या पाठ्य पुस्तक खरीद लेता है अथवा कोई अध्यापक जीवन–बीमा की किस्त जमा कर आता है तो उस खर्च से उसका कुछ पता नहीं चलता। मेस के बँधे मासिक खर्च से किसी की जीभ का रहस्य नहीं खुलता। रहस्य खुलता है फुटकर जलपानो से। आदमी अपने फुटकर और निष्प्रयोजन, योजनाहीन आकस्मिक व्यय से पहचाना जाता है। बँधी चीज़ों के लिए तो सभी खर्च करते हैं। अक्सर बड़े–बूढ़े कभी–कभी लड़कों के खाने खेलने की चीज़ें खरीद बैठते हैं और युवक कौतूहल वश अपनी प्रकृति के विरुद्ध वस्तुएँ ले बैठते हैं। इनका पता यही खर्च का हिसाब बताता है।

बहुत–से लोग 'टाइम–टेबुल' बनाकर काम करते हैं। पर उससे उनकी नियमितता के सिवा कुछ नहीं मालूम होता। खुलते हैं वे उस समय जब अपने 'टाइम–टेबुल' का बंधन तोड़ते हैं। विद्यार्थियों का स्वभाव पढ़ाई के बँधे घण्टों में लगभग एक–सा होता है, परन्तु इसके बाद वे समय को जिस बेकारी

और बेहिसाबी से बिताते हैं, वह उन्हें एक—दूसरे से अलग कर देती है। यही हाल दफ़्तर में खटने वाले क्लर्कों का है।

अक्सर हम अपने कुछ बेकार कागज फाड़कर या तो रद्दी की टोकरी में फेंक देते हैं या खिड़की के बाहर या कमरे से ही। अगर कोई उन रद्दी कागज़ों को बटोरकर जाँच करे तो वह आपके स्वभाव के विषय में बहुत कुछ सही अनुमान कर सकता है, रहस्य भी खोल सकता है।

किसी समाज का पता उसके धनाढ्य व्यापारियों, सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों को देखकर उतना नहीं चलता, जितना उसके बेकार आदमियों को देखकर। बेकार घूमने वाले आदमी ही किसी समाज की व्यवस्था का सच्चा हाल प्रकट करते हैं। आज देश में लाखों किसान—मजदूर बेकार पड़े हैं, कितने ही शरणार्थी आश्रयहीन दशा में घूम रहे हैं, बेकारी की दशा में लेखकों की कलमें शिथिल हो रही हैं, खून की स्याहियाँ सूख रही हैं, साँसों के तार—तार हो रहे हैं— हिन्दुस्तान इनमें छिपा है, इन अँधेरी घाटियों में जहाँ दिन नहीं आते, केवल रातें रहती हैं; उन अट्टालिकाओं और धवल सौध—शिखरों में नहीं, जो भली—भाँति सोने की चमक में प्रकाशित हैं! इस समाज का चित्रण भी वही कलम करेगी जो किसी रुपये की गुलाम नहीं, बल्कि बेकार पड़ी है, उन बेकारों के हुजूम की तरह, उनके साथ चलती है, उनसे बोलती है, उनकी सुनती है।

मगर मेरे दोस्त, तुम भी कहो शायद कि यह क्या गप्प हाँक रहा है। गप्प ही सही—गप्प पर भी क्या कोई व्यवस्थित बात कही जाती है? आज मेरी भी इच्छा थी कि तुमसे कुछ गप—शप करूँ। सम्भव है इससे मेरा कुछ अपनापन खुल जाये।

मैं तुम्हें अपने से दूर क्यों रखूँ और क्यों रखूँ तुम्हें भ्रम में? मगर तुम्हारी भी असलियत का पता तभी चलेगा, जब ऐसे बेकार निबन्ध को पढ़ोगे।

....

प्रशासनिक शब्दावली

1	Ability	योग्यता
2	Application	आवेदन
3	Assembly	विधानसभा
4	Autobiography	आत्मकथा
5	Advertisement	विज्ञापन
6	Broadcast	प्रसारण
7	Bureaucracy	अधिकारी तंत्र / नौकरशाही
8	Constituency	निर्वाचन क्षेत्र
9	Centralization	केंद्रीकरण
10	Compensation	क्षतिपूर्ति
11	Defendant	प्रतिवादी
12	Definition	परिभाषा
13	Enclosure	संलग्न
14	Encyclopedia	विश्वकोश
15	Educationist	शिक्षा शास्त्री
16	Fine Arts	ललित कलाएं
17	Fundamental Rights	मूलाधिकार
18	Graduate	स्नातक

19 Gross income.	सकल आय
20 Handicraft	हस्त कौशल
21 Honorarium	मानदेय
22 Interview	साक्षात्कार
23 Industrialisation	उद्योगीकरण
24 Library	पुस्तकालय / ग्रंथालय
25 Maximum	अधिकतम
26 Modification	संशोधन
27 Multi National	बहुराष्ट्रीय
28 Notification	अधिसूचना
29 Nominal Value	अंकित मूल्य
30 Official language	राजभाषा
31 Oath	शपथ
32 Parliament	संसद
33 Promotion	पदोन्नति
34 Quiz	प्रश्नोत्तरी
35 Questionnaire	प्रश्नावली
36 Representative	प्रतिनिधि
37 Retirement	सेवानिवृत्ति
38 Record	अभिलेख

39 Reminder अनुस्मारक

40 Secularism धर्मनिरपेक्षता

41 Signature हस्ताक्षर

42 Trainee प्रशिक्षार्थी

43 Translation अनुवाद

44 Ultimatum अंतिम चेतावनी

45 Anonymous सर्वसम्मत

46 Verification सत्यापन

47 Voluntary स्वैच्छिक

48 Working committee कार्यसमिति

49 Workshop कार्यशाला

50 Zonal आंचलिक